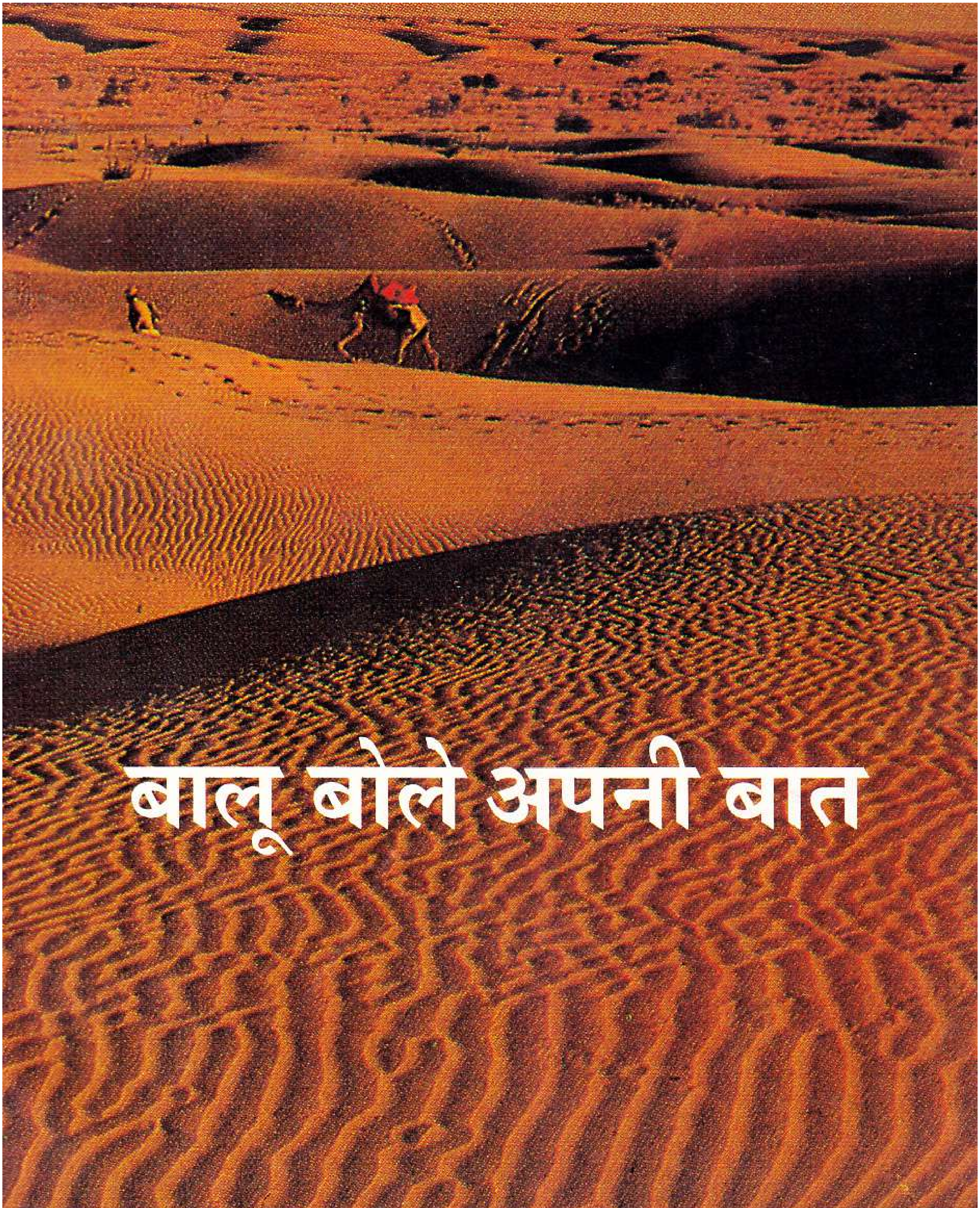


बालू बोले अपनी बात

पढ़ें और सीखें योजना

बालू बोले अपनी बात

धनराज चौधरी

विभागीय सहयोग

राम दुलार शुक्ल

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

जून 2001 : ज्येष्ठ 1923

PD 5T DRH

आवरण : कर्ण चड्ढा

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैम्पस	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्ल्यू.सी. कैम्पस
श्री अरविंद मार्ग	हेली एक्सटेंशन, बनाशंकरी III इस्टेज	डाकघर नवजीवन	32, बी.टी. रोड, सुखचर
नई दिल्ली 110016	**बैंगलूर 560085**	**अहमदाबाद 380014**	**24 परगना 743179**

मूल्य : रु. 33.00

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा अरावली प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा. लिमिटेड, द्वारा कम्पोज होकर एस. पी. ए. प्रिन्टर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी-17/3 ओखला फेज 2, नई दिल्ली 110 020 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

विद्यालय शिक्षा के सभी स्तरों के लिए अच्छे शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण की दिशा में हमारी परिषद् पिछले तीन दशकों से कार्य कर रही है। हमारे कार्य का प्रभाव भारत के सभी राज्यों और संघ शासित प्रदेशों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगत होता है और इस पर परिषद् के कार्यकर्ता संतोष का अनुभव कर सकते हैं।

हमने देखा है कि अच्छे पाठ्यक्रम और अच्छी पाठ्यपुस्तकों के बावजूद हमारे विद्यार्थियों की रुचि प्रायः स्वतः पढ़ने की ओर अधिक नहीं बढ़ती। इसका एक मुख्य कारण अवश्य ही हमारी परीक्षा-प्रणाली है, जिसमें पाठ्यपुस्तकों में दिए गए ज्ञान की ही परीक्षा ली जाती है। इस कारण बहुत ही कम विद्यालयों में विद्यार्थियों को कोर्स से बाहर की पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। लेकिन अतिरिक्त पठन में बच्चों की रुचि न होने का एक बड़ा कारण यह भी है कि विभिन्न आयु वर्ग के बालकों के लिए कम मूल्य की अच्छी पुस्तकें पर्याप्त संख्या में उपलब्ध भी नहीं हैं। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में इस कमी को पूरा करने के लिए कुछ काम प्रारंभ हुआ है पर यह बहुत ही अपर्याप्त है।

इस दृष्टि से परिषद् ने बच्चों की पुस्तकों के रूप में लेखन की दिशा में एक महत्वाकांक्षी योजना प्रारंभ की है। इसके अंतर्गत "पढ़ें और सीखें" शीर्षक से एक पुस्तकमाला तैयार की जा रही है जिसमें विभिन्न आयु वर्ग के बच्चों के लिए सरल भाषा और रोचक शैली में अनेक विषयों पर बड़ी संख्या में पुस्तकें तैयार क जा रही हैं। परिषद् इस शीर्षक के अन्तर्गत ही शिशुओं के लिए पुस्तकें, कथा-साहित्य, जीवनियाँ, देश-विदेश परिचय, सांस्कृतिक विषय, सामाजिक विज्ञान विषयों तथा वैज्ञानिक विषयों में अनेकानेक पुस्तकें निर्मित करती आ रही हैं। हम आशा करते हैं कि बहुत शीघ्र ही हिंदी में हम वैज्ञानिक विषयों पर 50 से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित कर सकेंगे।

वैज्ञानिक पुस्तकों के निर्माण में हम देश के जाने-माने वैज्ञानिकों एवं अनुभवी, सुयोग्य

प्राध्यापकों का सहयोग ले रहे हैं। प्रत्येक पुस्तक के प्रारूप पर भाषा, शैली और विषय-विवेचन की दृष्टि से सामूहिक विचार करके उसे अंतिम रूप दिया जाता है।

परिषद् इस माला की पुस्तकों को लागत मूल्य पर ही प्रकाशित कर रही है ताकि ये देश के हर कोने में पहुँच सकें। भविष्य में इन पुस्तकों को अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने की भी योजना है।

हम आशा करते हैं कि शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के क्षेत्र में किए गए कार्यों की भाँति ही परिषद् की इस योजना का भी व्यापक स्वागत होगा।

पुस्तक लेखन के लिए डा. धनराज चौधरी ने हमारा निमंत्रण स्वीकार किया, जिसके लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं।

"पढ़ें और सीखें" पुस्तक माला की इस योजना में विज्ञान की पुस्तकों के लेखन का मार्गदर्शन, प्रख्यात शिक्षाविद प्रो. राम चरण मेहरोत्रा कर रहे हैं। मैं प्रो. राम चरण मेहरोत्रा और अपने सभी सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद और बधाई देता हूँ।

इस माला की पुस्तकों पर बच्चों, अध्यापकों और बच्चों के माता-पिता की प्रतिक्रिया का हम स्वागत करेंगे, ताकि इन पुस्तकों को और भी उपयोगी बनाने में हमें सहयोग मिल सके।

जगमोहन सिंह राजपूत
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली
अप्रैल 2000

दो शब्द

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.) की **पढ़ें और सीखें योजना** के अंतर्गत यह एक छोटा-सा प्रयास है। जब परिषद् के प्रगतिशील निदेशक प्रो. जगमोहन सिंह राजपूत ने मुझे इस दिशा में विज्ञान के विषयों का कार्यभार संभालने के लिए आमंत्रित किया तो अपने वैज्ञानिक मित्रों की अतिव्यस्तता के कारण यह उत्तरदायित्व स्वीकार करने में मुझे संकोच था।

इस दिशा में मेरा प्रयास रहा है कि विज्ञान के विभिन्न विषयों के जाने-माने विद्वानों को इस सराहनीय कार्य के लिए निमंत्रित कर सकूँ। ऐसा मेरा विश्वास है कि खोज और अनुसंधान की आनंदपूर्ण अनुभूतियों वाले वैज्ञानिक ही अपने आनंद की एक झलक बच्चों तक पहुँचा सकते हैं। मैं उनका हृदय से आभारी हूँ कि उन्होंने अंकुरित होने वाली पीढ़ी के लिए अपने बहुमूल्य समय में से कुछ क्षण निकालने का प्रयास किया। बालक राष्ट्र की सबसे बहुमूल्य और महत्त्वपूर्ण निधि है और मेरे लिए यह किंचित आश्चर्य और संतोष की बात है कि हमारे इतने लब्धप्रतिष्ठ और अत्यंत व्यस्त वैज्ञानिक बच्चों के लिए थोड़ा परिश्रम करने के लिए सहर्ष मान गए हैं। मैं सभी वैज्ञानिक मित्रों का हृदय से आभारी हूँ।

इन पुस्तकों की तैयारी में हमारा मुख्य ध्येय रहा है कि विषय ऐसी शैली में प्रस्तुत किया जाए कि बच्चे स्वयं इसकी ओर आकर्षित हों, साथ ही भाषा इतनी सरल हो कि बच्चों को इनके अध्ययन से विज्ञान के गूढ़तम रहस्यों को समझने में कोई कठिनाई न हो। इन पुस्तकों के पढ़ने से उनमें अधिक पढ़ने की रुचि पैदा हो, उनके नैसर्गिक कौतूहल में वृद्धि हो जिससे ऐसे कौतूहल और उसके समाधान के लिए स्वप्रयत्न उनके जीवन का एक अंग बन जाए।

यह योजना परिषद् के वर्तमान निदेशक प्रो. जगमोहन सिंह राजपूत की प्रेरणा से चल रही है। मैं उन्हें इसके लिए बधाई और धन्यवाद देता हूँ।

डा. धनराज चौधरी ने इस पुस्तक को लिखने के लिए मेरा अनुरोध स्वीकार किया

जिसके लिए मैं हृदय से आभारी हूँ। परिषद् के विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के अध्यक्ष प्रो. राम दुलार शुक्ल विज्ञान की पुस्तकों के लेखन से संबंधित योजना के संयोजक एवं संपादक हैं और बहुत परिश्रम और कुशलता से अपना कार्य कर रहे हैं। मैं प्रो. शुक्ल को हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

आशा है कि ऐसी पुस्तकों से हमारी नई पीढ़ी को बाल्यकाल ही में वैज्ञानिक मानसिकता का शुभारंभ हो सकेगा और विज्ञान के नवीनतम ज्ञान के साथ ही उन्हें अपने देश की प्रगतियों एवं वैज्ञानिकों के कार्य की झलक मिल सकेगी जिससे उनमें अपने राष्ट्र के प्रति गौरव की भावना का भी सृजन होगा।

राम चरण मेहरोत्रा

नई दिल्ली

अध्यक्ष

पढ़ें और सीखें योजना

(विज्ञान)

लेखक परिचय

डा. धनराज चौधरी का जन्म 1942 में जालोर, राजस्थान में हुआ। पेशे से आप भौतिक विज्ञान के प्राध्यापर्क हैं एवं रूझान से साहित्यानुरागी। भौतिक विज्ञान में आपका शोधकार्य बालू मिट्टी में ऊष्मा के प्रवाह से संबंधित था। अपने शोधकार्य के कारण आप कई बार विदेश प्रवास पर रहे।

डा. चौधरी के उपन्यास – 'प्रवाह', 'तीसरा पहर', 'पाताल पार कुआँ' और 'तथापि' चर्चित रहे हैं। आपका एक कहानी संग्रह 'ज्वार यात्रा' एवं एक व्यंग्य संग्रह 'गौतम बुद्ध और एक दुखी आत्मा' प्रकाशित हो चुके हैं। सामान्य जन के लिए विज्ञान अध्ययन हेतु लिखी गई आपकी पुस्तकें – 'ब्रह्माण्ड का रहस्य', 'पदार्थ का रहस्य', 'सचित्र विज्ञान विश्वकोश' तथा 'क से कम्प्यूटर' हैं।

सम्प्रति – राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर में भौतिकी पढ़ाते हैं।

विषय-सूची

1. मेरी बस्ती मरुधरा

शंकर बैठा-बैठा आगे पड़ी बालू थप-थपाने लगा। कुछ देर तक ऐसा कर वह लेट गया और हाथ फैला ढलान की ओर की बालू को हथेली से पीटता रहा। नं जाने कब बालू बोलने लगी। वे स्वर शीघ्र ही उच्च आवृत्ति में आ मधुर गान में परिवर्तित हो गये। कैसी विलक्षण प्रक्रिया है! अक्षय ध्यान से सुनने लगा। सारे ही कण एक-सी आवृत्ति से कम्पायमान हो उठे। वह अलौकिक गान दो-तीन मिनट तक होता रहा। फिर टीले की घरघराहट शनैः शनैः हल्की होकर थम गई।

''क्यों यह बालू का समूह गान कैसा लगा?'' राजेन्द्र ने पूछा।

''जैसे टीबे के नीचे कोई छिपा मंदिर है और उसमें आरती हो रही है।'' अक्षय ने भाव-विभोर हो कहा और वह बालू के भीतर देखने का प्रयास करने लगा।

अरब के एक रेगिस्तान में हुई दर्दनाक मौतों का वर्णन एक अखबार की कतरन में इस प्रकार छपा था :

'सन् 1912 में प्रसिद्ध घुमक्कड़ मॉरिस कोर्टियर ने एक कारवाँ के दर्जनों मृत शरीरों को पाया था। कारवाँ किसी छोटे रास्ते के चक्कर में वहाँ तीन वर्ष पूर्व फँस गया था। यायावर कोर्टियर लिखते हैं, ''प्यास के मारे, अरब एवं काले गुलाम इंतजार में सटे-सटे बैठे थे कि कोई मदद आए जो कि कभी नहीं आई।'' इस फ्रांसिसी गवेषक ने विवरण में आगे यह भी लिखा है, 'वे वहाँ मर गए, उनकी आँखें अहनेत (Ahnet) पहाड़ों की ओर टकटकी लगाए थीं।........... उन्हें पता भी

था कि मात्र 50 किलोमीटर की दूरी पर पानी है जोकि उनकी जान बचा सकता है मगर उनमें इतनी शक्ति नहीं बची थी कि वे अंतिम प्रयास कर पाते।'

मेरे पाठक मित्र, 'सहारा' रेगिस्तान पर पुस्तक के लेखक जेरेमी स्विफ्ट तो मुझ मरुस्थल से इतने अभिभूत रहे कि वे एक जगह कहते हैं, "मनुष्य की प्रकृति के लिए मरुस्थल एक उपयोगी दर्पण है... वहाँ खुद पर भरोसा, चुनौती झेलना और खतरा उठाना स्वाभाविक हो जाते हैं। आपको गहन एकांत का सामना करना पड़ता है तथा आप अकेला होना सीखते हैं। मरुस्थल कठिनाई और शक्ति सिखाता है : वहाँ कोई शांतिपूर्वक और अनादर झेलते हुए भी छोटे-मोटे मानसिक और भौतिक घावों को ठीक करना जान लेता है।"

अब यदि यह कहूँ कि मेरी बस्ती-मरुधरा अनूठी है तो तुम्हें कोई अतिशयोक्ति नहीं लगेगी। मैं बालू विनम्र हूँ और कठोर भी। संस्कारित भी और उज्जड़ भी। एकांतिक मगर सारे दर्द समेटे हुए। अनुपयोगी दिखते हुए भी, हूँ बड़े काम की। और छोरहीन लगती हुई दिखूँ मगर हूँ सीमाओं को समेटे हुए। हाँ तुम्हें जरूर लगेगा, ऐसा भी तो है कुछ समुद्र भी । ठीक कह रहे हो तुम, समुद्र और मरुस्थल में बहुत सारी समानताएं हैं।

समुद्र और मरुस्थल एकरस, असीम और दुर्गम गुण लिए हुए स्थान की बात छेड़ी जाय तो समुद्र और मरुस्थल दोनों के चित्र मस्तिष्क में एक साथ कौंधते हैं। सब कहीं पानी, बिना रूकावट के नीले पानी का विस्तार। ऊपर आकाश नीचे दूर-दूर तक पानी। सब कहीं बालू मिट्टी, कहीं कोई रूकावट नहीं लिया हुआ पीले रंग का विस्तार। ऊपर आग बरसाता आसमान और नीचे गहरे और गहरे बालू में पेंठती जाती गर्मी। सनसनाती पवन और उठ गई पानी की चादर। सांय-सांय करती हवा जो चली तो उठा एक बवंडर गुस्से में तमतमाया-सा। दूर-दूर तक कोई नहीं, इक्का-दुक्का जहाज या फांद लगाती मछली। इधर भी नीरस में ऊब मिटाने को दिखा कोई ऊँट (मरुस्थल का जहाज) या कंटीली झाड़ी में फुदका चूहा। दोनों ही दिन में तपते हैं रात्रि में ठिठुरते हैं। और अब तो मूल्यवान खनिज तेल के लिए गहरे कुएं, मरुस्थल तथा समुद्र दोनों में खोदे जाते हैं।

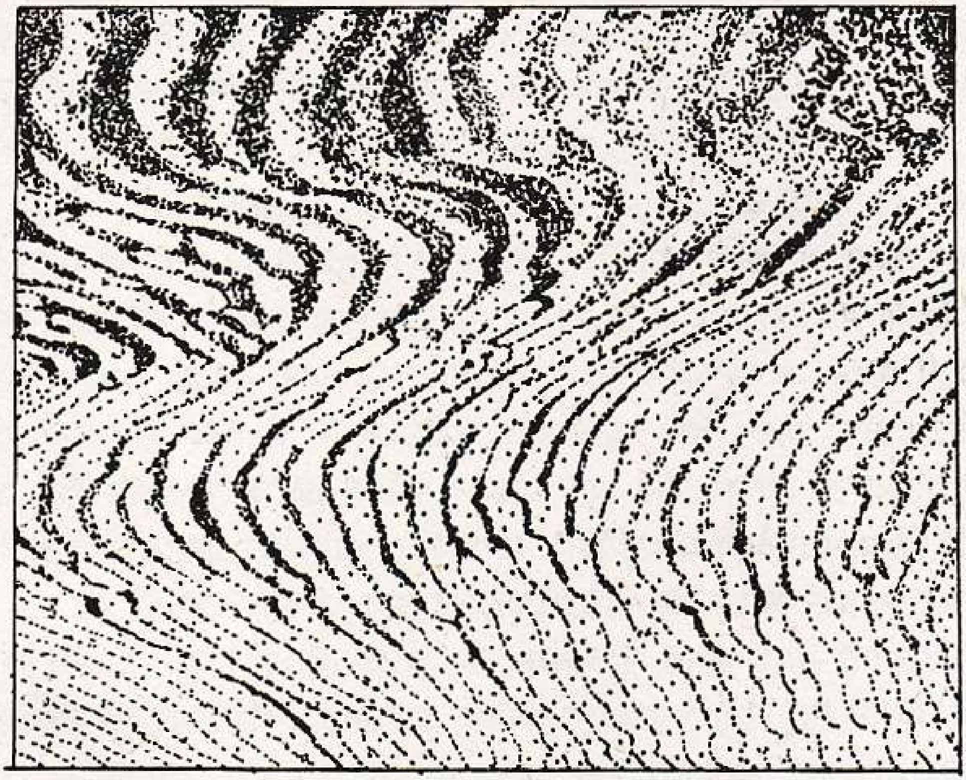
हाल ही के वर्षों में प्रकृति के प्रेमियों और वैज्ञानिकों के लिए सागर और मरुधरा दिलचस्पी के विषय हुए हैं। दूसरे छोर पहुँचने का कोई चारा नहीं होने के कारण इनमें से ही यात्रा सदियों से की जाती रही हैं। मजबूरी अलग बात है वरना इसमें कोई नहीं ठहरना चाहता था। कठिनाई भरे अभियान में जोखिम ही जोखिम। मृग जल और खारे पानी के विस्तार पर भी गला गीला करने को बूँद-बूँद के लिए तरसना पड़े तो, कौन झोंके इसमें अपने आपको। बहुत समय तक नए-नए प्राकृतिक नियम, अजूबे रहस्यों का कार्य कारण समझने और अन्यत्र विविध खोजों में लगे हुए वैज्ञानिक समुद्र और मरुस्थल को हेय समझते रहे। उन्हें मरुप्रदेश में वैज्ञानिक दिलचस्पी की बातें नहीं जान पड़ रही थीं न ही समुद्र का विज्ञान भी आकर्षक जान पड़ रहा था। वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्ति की चाह में समुद्र और मरुस्थल में वैज्ञानिक दलों ने दिलचस्पी हाल के सौ वर्षों में ही दिखाई है। मगर यह भी सच है कि एक बार जिज्ञासु ने जैसे ही इनकी ओर नजरें कीं तो यहाँ मैदान और पहाड़ से अधिक कुतूहल नजर आया। वैज्ञानिकों को अपनी बुद्धि की खुराक के लिए मरुस्थल और समुद्र बहुत ही उपयोगी जान पड़े।

मरुस्थल और समुद्र में जीव वैज्ञानिकों की भी रुचि लगभग उसी मात्रा में जाग्रत हुई है जितनी कि भौतिक वैज्ञानिकों की। यहाँ भू-वैज्ञानिक, मानव-शास्त्री, समाज-शास्त्री, आयुर्विज्ञानाचार्य आदि की दिलचस्पी बहुत सारे कारणों से हैं। उदाहरण स्वरूप एक भौतिकशास्त्री की मणिभ (क्रिस्टल) संरचना में इसलिए रुचि होती है कि वह वृहद्तम पैमाने पर एक-सा दोहराव लिए होती है। एक से रवों में वे ही उतार-चढ़ाव, कोण-भुजाएँ और आकार-आकृतियाँ होती हैं। सागर और मरु की उर्मिकाओं में भी ऐसा लगता है। पानी में उठी लहरें और मरुस्थल में बनी लहरों को गौर से देखें तो समानता यह है कि दोनों में दिखती आकृतियों का दोहराव है। मरु की उर्मिकाएँ और सागर की लहरें (अथवा पानी में बनी तरंगें) वैज्ञानिक दृष्टि से समान नहीं हैं। वैज्ञानिक तौर पर एक तरंग से हमारा तात्पर्य है कि उस स्थल पर ऊर्जा का आवागमन। एक जल की तरंग में ऊर्जा

का संचार धरातल पर उठते गिरते शीर्ष और गर्त से होता है। तुलना के लिए हम ध्वनि लेते हैं। यहाँ पदार्थ से ऊर्जा का स्थानान्तरण तरंग-प्रक्रिया द्वारा होता है। अब हम बालू पर बनी उर्मियाँ लें। रेत की इन लहरियों में ऊर्जा का संचार नहीं होता है वे तो पवन के प्रवाह के दौरान बनी हुई धरती के धरातल पर ढेरी या सलवटें हैं। बालू की तरंगें इसीलिए गतिकी अर्थ में तरंगें नहीं हैं। कुछ ऐसी भिन्नताएँ वैज्ञानिकों को प्रेरित करती हैं कि वह अन्वेषण कर गतिकी अर्थों में जाने कि वायु में उठे हुए कणों का धरती पर जमाव और पानी में तैरते कणों का धरातल पर जमाव कैसी प्रक्रियाएँ हैं। घनत्व अनुपातों को ही देखें तो मृदा के एक मुख्य खनिज क्वार्टज* और वायु का अनुपात 2000/1 है जबकि वही अनुपात क्वार्टज और जल का लगभग 1.7/1 है। बहते हुए पानी द्वारा रेत को ले जाने को वैज्ञानिक तौर पर समझना कठिन समस्या है। प्रेक्षणों के लिए वायु में हो रही प्रक्रियाएँ अधिक सरल हैं। हमारा निवास भी तो वायु के समुद्र में हैं। धूल भरी आँधी में हम खड़े रह लें, मगर एक बरसाती नदी जो कि मिट्टी भी अपने बहाव में ले जा रही है, में कोई वैज्ञानिक कार्य करना कठिन है।

एक भौतिक वैज्ञानिक जो कि उर्मियों पर ध्यान लगाए हुए हो, वह देखता है कि समुद्र किनारे की बालू पर भी तो वैसी दूर-दूर तक उर्मियाँ बनी हुई हैं। वे यहाँ भी मरुस्थल की तरह बलुआ मिट्टी से ही बनी है। सूक्ष्म निरीक्षण से उसे पता लगता है कि नहीं, क्योंकि दोनों की प्रकृति नितांत भिन्न है। कुछ देर सोचने पर वह सूझ पर प्रसन्न हो उठता है – और होना भी चाहिए। अलग-अलग परिस्थितियों में वे बनी जो हैं। पानी की लहर के आने और लौट कर जाने के बार-बार दोहराव से इन चोटियों (शृंग) और खड्डों (गर्त) का निर्माण हुआ है। कोई लेटे-लेटे समुद्र किनारे की किसी बालू लहर को देखे (चित्र 1.1) तो उस पर "अंगूठा प्रिंट" (थम्ब प्रिंट) जैसा खाका नजर आयेगा। वायु प्रवाह से मरुस्थल में बनी उर्मियों के कार्य कारण बिल्कुल ही अलग प्रकार के हैं। वहाँ वायु धरातल के कणों को हटाती है। बालू-कण कुछ औसत दूरी चलने के बाद धरातल पर

*क्वार्टज प्रकृति में पाया जाने वाला एक कठोरतम खनिज है जो कि चट्टानों में उपस्थित होता है।



चित्र 1.1 – बालू की उर्मियाँ

बिछे अन्य कणों से टकराते हैं। वे उन्हें ऊर्जा देते हैं और स्वयं वहीं ठहर जाते हैं। वे धरातल पर बैठते हुए अपनी ऊर्जा नीचे के स्थिर कणों को दे देते हैं और ऐसी ही प्रक्रिया लम्बी दूरी तक जारी रहती है।

उर्मियों की बनावट और उसके लिए उत्तरदायी प्रक्रियाओं की खोज में लगा भौतिकी का विद्यार्थी समुद्र और मरुस्थल तक ही सीमित नहीं रह पाता। उसे पहाड़ पर गिरे हिम में भी लहरिया बनावट नजर आती है। क्या इन्हें बनाने में कुछ और ही कारण रहे अथवा वे हमारे जाने गए कारणों से मेल खाये हुए हैं? उनकी रचना में लगे हिमकणों के आकार से दो तरह की भिन्न उर्मियाँ स्पष्टतया नजर आती हैं। जबकि कोई हिमकण मोटे और ठोस बर्फ से बना हुआ हो, उनसे निर्मित उर्मियाँ मरुस्थल जैसी ही प्रतीत होती हैं। यदि हिमपात ताजा पपड़ीनुमा

हुआ है, तो उससे जन्मी हुई आकृति जल की प्रक्रिया से बनी उर्मियों जैसी होती हैं। एक-सी दिखलाई देती बनावट यह गारन्टी नहीं देती कि उनकी भौतिकी भी वही है और गणित भी इसलिए शोधकर्मी के लिए वह बात नए सिरे से गवेषणा का विषय हो जाती है।

मरुस्थल में रुचि क्यों? : विज्ञान का लक्ष्य जहाँ एक ओर प्रकृति के विविध क्रिया-कलापों को कार्य-कारण द्वारा जानना समझना है वहीं नैसर्गिक वस्तुओं में बाहर से परिवर्तन करने पर आए नये गुणों को खोजना भी उसका लक्ष्य है। हमारा जीवन स्तर सुधरें और जीवित रहने के लिए हमारा संघर्ष कम जोखिम वाला हो इसके लिए शुद्ध विज्ञान की समझ का उपयोग कर उसकी सहयोगी विधा तकनीकी प्रोद्यौगिकी का विकास होता है। प्रकृति ने कुछ भी तो बेकार नहीं बनाया है तो फिर मरुस्थल अनुपयोगी कैसे हो सकते हैं? पहाड़ पर खेती नहीं होती मगर पहाड़ में खनिज हैं। समुद्र तो खारे जल से भरे हैं मगर दूर देश पहुँचने हेतु उनका उपयोग कितना पुराना है। वैज्ञानिक मन प्रश्न करता है – क्या मेरा आग उगलता हुआ स्थल निरर्थक तौर पर ऊर्जा उडेल रहा है? यह छिद्र युक्त धरातल ठेठ भीतर तक बालू लिए ही है? या बालू तो मात्र आवरण है उसके भीतर भी बहुत कुछ है। अवश्य ही पर्यटकों को यहाँ की सुहाती भोर और तारों से झिलमिलाते नभ ने रिझाया है। ध्रुव तारे का महत्त्व कोई नाविक या रात्रि में ऊँट पर चढ़े मरुस्थल के व्यापारी से अधिक भला कौन जानता है। किसी खगोल शास्त्री को इससे उचित स्थान कहाँ मिलेगा आकाश टटोलने हेतु क्योंकि यहाँ न नमी है, न झाड़-झंखाड़ और न कोई अनचाही हलचल। यहाँ है स्वच्छ आसमान वर्ष के बहुत सारे दिनों तक। प्रकाशीय दूरदर्शी और रेडियो-दूरदर्शियों को स्थापित करने हेतु तो मरुस्थल आदर्श स्थल है।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में विश्व में हुए उल्लेखनीय तकनीकी कार्यों में से एक था बहुत गहरे कुओं की खुदाई। पहला गहरा कुआँ ईरान में अरब मरुस्थल में खोदा गया था। खनिज तेल की तलाश में वहाँ पहली सफलता मिली थी। काला सोना (ब्लेक गोल्ड) जैसे प्रतिष्ठित नाम से संबोधित इस बहुमूल्य

खनिज (जिसमें पेट्रोल, डीजल, केरोसीन आदि हैं) का भण्डार बालुई धरातल के नीचे की चट्टानों के बीच छिपा हुआ है। एक मोटा अनुमान है कि विश्व का एक तिहाई प्राकृतिक तेल विभिन्न मरुस्थलों में बँटा हुआ है। औद्योगिक समृद्धि के लिए स्वचालित यंत्रों के ईंधन के रूप में आवश्यक इस मूल्यवान सामग्री ने इंजीनियर, भूगर्भ शास्त्री* (जिओलोजिस्ट) और भौतिकविद् को सर्वेक्षण क्रे काम से लेकर तेल शोधक कारखाने स्थापित करने हेतु अपनी ओर आकृष्ट किया। मरुस्थल में उनकी सफलता प्राप्ति और वहाँ के अनुभवों के आधार पर ही ऐसे रिग और ड्रिल (कुआँ खोदने के यंत्र) विकसित हुए कि गहरे समुद्र के तल से तेल को निकाला जा सके।

एक खनिज 'लिग्नाइट' कोयला के वृहद् भण्डार मरुस्थलों में विद्यमान हैं। आज की सभ्यता को प्राणवान किये हुए तेल और कोयला दोनों ही बालू की उपेक्षित भूमि के नीचे दबे हुए हैं। सम्भावना तो यह है कि आने वाले समय में विश्व में बढ़ती ऊर्जा की माँग की पूर्ति मरु भूमि द्वारा ही होगी। यहाँ बारहों महीने पवन का प्रवाह बना रहता है। पवन चक्कियाँ, गहरे कुओं से जल निकालने हेतु और विद्युत उत्पादन के लिए प्रयुक्त की जा सकती हैं। वैकल्पिक ऊर्जा** स्रोतों में तापीय स्रोत*** प्रमुख हैं जो कि प्रचण्ड धूप में अधिक कार्यक्षमता से कार्य करते हैं। प्रकाश विद्युत प्रभाव**** द्वारा विद्युत उत्पादन हेतु फोटो वोल्टाइक युक्तियों के जाल बिछाने के लिए तो मरुस्थल सर्वोत्तम स्थान है। खेती और उद्योग के लिए अनुपयुक्त ऐसे स्थानों से ही विद्युत की आपूर्ति इक्कीसवीं सदी में होने की संभावनाएँ हैं। आज मरुस्थल के कोने-कोने में वैज्ञानिकों की टोलियाँ मिलेंगी नवीनतम तकनीकी को प्रयोग में लेती हुई, अनजाने तथ्य एकत्रित करती हुई, रहस्यों से पर्दा उठाते हुई। मरुस्थल हमें पेट्रोलियम पदार्थ ही नहीं प्रदान करते

---

* भूगर्भ शास्त्री – वैज्ञानिक, जो धरती की भीतरी रचनाओं आदि का अध्ययन करता है।

** वैकल्पिक ऊर्जा – सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा आदि।

*** तापीय स्रोत – ऊष्मा से ऊर्जा उत्पन्न करने वाले साधन।

**** प्रकाश विद्युत प्रभाव – प्रकाश के द्वारा धातु आदि से विद्युत प्राप्त करना।

वे बहुत सारे मूल्यवान खनिज हमें देते हैं। जिप्सम एक बहुपयोगी खनिज है। आज की चकाचौंध को बनाए रखने वाले रंग रोगान में जहाँ एक ओर इसका उपयोग है वहीं फसलों का भोजन रासायनिक खाद इसी खनिज को प्रयोग में लेकर बनाया जाता है। मुलतानी मिट्टी और प्लास्टर ऑफ पेरिस मरु भूमि के गर्भ द्वारा दी गई भेंट हैं। टंगस्टन जैसी बहुमूल्य धातु भी रेगिस्तान की चट्टानों में जहाँ पाई जाती है, वहीं मरु क्षेत्र में सोडियम सल्फेट और नमक भी प्राप्त होता है। बालुई पत्थर (सेण्ड स्टोन) अपने पीले और गुलाबीपन के कारण एक खूबसूरत इमारती पत्थर है। मरुस्थल में न केवल बालुई पत्थर एवं चूना पत्थर बहुतायत में उपलब्ध होता है, संगमरमर भी वहाँ कई स्थानों में पाया गया है।

मैं बालू, तुम्हें बता रही थी कि मेरे प्रति आकर्षण के कई कारणों में से एक है मेरी उपयोगिता। मानव द्वारा मुझसे वे वस्तुएँ प्राप्त करना जिससे कि उद्योगों को कच्चा माल मिले और उन्हें चलाने के लिए ऊर्जा भी। मगर तुम जानते हो कि अक्सर ही ऐसा कुछ अप्रत्याशित होता है जिसकी कभी कल्पना भी नहीं की हो। खोजी व्यक्ति ने फावड़ा और कुदाली उठाए थे कि जाने पहचाने खनिज तो वहाँ भी मिले मगर वहाँ मिले जीवाश्म* (फॉसिल) भी। वस्तुतः किसी समय में यहाँ समुद्र था जहाँ आज मेरा विस्तार है, अतः समुद्र के जीवों के साक्ष्य तो यहाँ उपस्थित होने ही थे। इससे अवश्य भूगर्भ वैज्ञानिक और प्राचीनकाल के जीवों में रुचि रखने वाले जन्तुशास्त्री की बहुत सारी शोध सामग्री उपलब्ध हो जाती है। मगर उन खोजी व्यक्तियों को कहाँ अनुमान कि वहाँ डायनासौर के जीवाश्म भी पर्याप्त संख्या में होंगे। डायनासौर के जीवाश्म तो यह भी इंगित करते हैं कि वहाँ घनी वनस्पति और जंगल रहे होंगे। ऐसे में प्रागैतिहासिक काल में रुचि रखने वाला वनस्पति शास्त्री मेरी भूमि में अन्वेषण हेतु तंबू क्यों नहीं गाड़े, लम्बा पड़ाव क्यों न करे।

मेरे यहाँ के मृत वनस्पति और जन्तु ही जीवशास्त्रियों के केवल आकर्षण नहीं हैं। नागफनियों (कैक्टस) की विविध जातियों का बहुत बड़ा भण्डार नैसर्गिक तौर पर तुम्हें मेरी बस्तियों में ही मिलेगा। कांटेदार झाड़ियाँ, गांठ और लटनुमा

संरचनाएँ, पत्तियों रहित और पतली डालियाँ फैलाए न जाने कैसे-कैसे आकार प्रकार लिए कैक्टस इस वीराने को आबाद किए हुए हैं। इनके पुष्प तो इतने मोहक हैं कि वे ठग ही लेते हैं दर्शक को। इन्हीं झाड़ियों में कहीं दुबके हुए हैं वे जीव जो रात की ठण्डक में कूदेंगे-फादेंगे-रेंगेंगे। दूर पहाड़ों या ठण्डे स्थानों पर ठिठुरते पक्षी सर्दियों में प्रवास हेतु मेरे यहाँ अस्थाई बसेरा डालते हैं। किस ज्ञान से नियंत्रित वे हजारों किलोमीटर की दूरी तय कर प्रतिवर्ष मेरे यहाँ निश्चित स्थानों पर आते हैं और फिर ठीक निर्धारित दिनों में वे बिना भटके अपने स्थाई आवास पर पहुँच जाते हैं। यह विषय, पक्षी शास्त्री को बड़े दिनों से बेचैन किए हुए है।

मरुस्थल के आकर्षण : मेरी भूमि द्वारा मनुष्य को दिए गए निमंत्रण कई प्रकार के हैं। देखो न रेत का कालीन बिछा है निर्बाध। एक सी लहरों का कसीदा और यहाँ-वहाँ उभार। तलवारनुमा या कि अर्धचन्द्राकार ढूह किसी के कान में फुस फुसाते हैं – आओ मैं अपना रहस्य तुम्हें कहूँगा। एक अरबी कहावत तो है भी मेरे यथार्थ को सच में व्यक्त करती हुई : 'मरुस्थल अल्लाह का बगीचा है, जहाँ से आस्थावानों के प्रभू ने सारे क्षुद्र पशु एवं मनुष्य हटा दिए ताकि वह ऐसा स्थान बचा रहे जहाँ वह शांति में रह सके।' भोले-भाले निवासियों की यह शरण-स्थली आधुनिक छल-कपट को पास नहीं फटकने देती। वे मोटा (कपड़ा) पहनते हैं और मोटा (अनाज) खाते है। निरंतर संघर्षरत मरुवासी सभ्य इलाकों से आए पर्यटकों के लिए आश्चर्य भी हैं और सबक भी। उनकी तो रग-रग में है : कम आवश्यकताओं से कैसे काम चलाया जाए तथा जीवन सादा किस भांति रखा जाए। शुष्क और ढर्रे की दिखती इनकी दिनचर्या के पीछे छिपे इनके उत्सव, मेले, कर्मकाण्ड कोई देखे तो जाने कि भरपूर जिंदगी कैसे छलक पड़ती है। इनके कपड़ों पर कसीदाकारी, हस्तकला, भोजन की विविधता और रस्म रिवाज सब ही तो निराले हैं। कला में इतने धनी होते हुए भी इनके नृत्य-गायन-वाद्य किसी अदृश्य पालनकर्ता को रिझाने हेतु हैं जिसके अस्तित्व के प्रति उन्हें तनिक संदेह नहीं है।

सहारा मरुस्थल में लम्बे समय तक रहने के बाद वहाँ के दैनिक जीवन और पारिस्थितिकी पर लिखी मौलिक पुस्तक में विद्वान लेखक 'जिरेमी स्विफ्ट' कई सारे सुंदर प्रसंग उद्धृत करते हैं। वहाँ के कबीलावासियों की गरीबी और उनकी दुखती रग वे पहलु हैं जिनको सुनकर कोई भी संवेदनशील दंग रह जाता है। उस पुस्तक में उल्लेखित अनेकों घटनाओं में से एक का बयान करना यहाँ समुचित जान पड़ता है – "जब कि हम ऊँटों की बात कर रहे थे तभी एक जवान आदमी टीबे के पीछे से निकल कर आया। मूंज से गुंथी रस्सी से दो कमानियाँ जोड़कर उसने एक फंदा बना रखा था। उसने हमें बताया कि उसकी बहुत सारी बकरियाँ मर चुकी हैं और वह अभी तो चिंकारे के शिकार हेतु निकला है। मैंने जिज्ञासा जाहिर की कि इस तरह के भारी भरकम फंदे के स्थान पर कोई सीधा सादा तरीका नहीं कि शिकार कर सको? वह बोला, 'यदि मेरे पास ऊँट होते तो उनका पीछा करना आसान हो जाता जब कि चिंकारे भागते भागते थक जाते, तब मैं भाले से उन्हें मार डालता। मगर मेरे पास नहीं हैं। इसलिए मुझे तो इसी तरह शिकार करना होगा।' जब मैंने उससे जानना चाहा कि जब-जब वह परिवार से दूर रहता होगा तो उसके बच्चे भोजन का कैसे प्रबन्ध करते होंगे। उसने बताया कि उसकी पत्नी जंगली घास के बीज एकत्रित कर लेती है और उनसे काम चल जाता है। जैसे ही बात पूरी हुई वह फंदा डालने की जल्दी में भागा कि वह यह काम जल्दी करले वरना रात उतरने वाली ही है। वहीं का एक कबीला जो कि 'नेमादी' नाम से जाना जाता है उनका अध्ययन भी स्विफ्ट ने किया हैं। स्विफ्ट लिखते हैं : "नेमादी की दुनिया जादू-टोंनो से भरी पूरी है और उनका शिकार कर्म भी छोटे-मोटे कर्म काण्ड के बाद आरम्भ होता है।"

एक प्रकृति के प्रेमी पर्यटक को अपनी प्रसन्नता के लिए मरुभूमि में बहुत कुछ सुहाता हुआ मिलता है। सन्नाटे में आकाश की विविधताएँ पर्यटक को मोह लेती हैं। एक पर्यटक को शांत दिन में जहाँ निर्मल आकाश दूधिया रंग लिया नजर आता है तो वही अनंत विस्तार यदि पवन् फुंफकारनें लगे तो पीलिया पीड़ित हो सकता है। चारों ओर भूरा और पीला-पीला-सा अस्वच्छ। संध्याकाल

में वह गुलाबी झीनी चादर का चंदोवा लगाये होता है जिसमें एक-एक कर किसी नियमित सभा के सदस्यगण ज्योतिर्मय पुंज तारे उपस्थित होते हैं। जगमगाहट के साथ वातावरण पुनः रंग बदलता है। मरुस्थल में घुप्प अंधेरे का क्या काम? उसे आवश्यक रोशनी के लिए चाँद की गरज भी नहीं। आकाश गंगा लेटे हुए पर्यटक की आँखों के सामने बिना रूकावट के प्रकट है जब तक कि कोई भूली भटकी बदली विघ्न डालने न आ जाये। दिन में यहाँ का एक-एक कण आग उगलने के कर्म में लगा हुआ होता है। अवश्य ही मरुस्थलीय झाड़ियों ने बहुत लम्बी लड़ाई लड़ी होगी ताकि उनका अस्तित्व बना रहे। प्रयास और लगे रहने पर सारी प्रतिकूलताओं के बावजूद विजय सुनिश्चित है। यह सीख मरुस्थल की वनस्पतियाँ अपने यहाँ आये हुए अतिथि को देती हैं। भारत के थार मरुस्थल में तो कोई घुमक्कड़ बहुत कुछ अनपेक्षित और अकल्पनीय भी पाता है। वहाँ है स्थापत्यकला की सुंदर रचनाएँ तथा उत्कृष्ट सौंदर्यबोध ली हुई कला कृतियाँ। विदेशी आक्रमण से निरापद जगह होने के कारण ये वे आदर्श स्थान रहे हैं जहाँ कि चिर स्थाई मंदिर बनाये जा सकें, मूर्तियाँ और स्तम्भ उकेरे जा सकें। बलुआ पत्थर की बनी जालियाँ, उन पर नक्काशी, और हवेलियों की कतारें वहाँ हैं जहाँ पर कि रहने के लिए एक-एक पल आपदाओं के कारण चुनौती भरा रहा है। मरुस्थलीय इलाके में ही भित्ति चित्र के बेजोड़ नमूने हैं जो ऊपरी तौर पर रूखे-सूखे दिखते निवासियों में बसी कल्पनाशीलता का साक्ष्य प्रदान करते हैं। इन्हीं बालू के टीलों के बीच ही तो ऋषि कपिल अमर मन्त्र रच डालते हैं। मरुस्थल की मूल उपज खरबूजे को देखकर ही वह भाव जाग्रत हुआ होगा जिसमें कहा गया है कि मेरे बंधन इस तरह हट जायें जिस तरह पकने पर खरबूजे से डाली : ॐ त्रयम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारूकमिव बन्धनात्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्।। (तीन नेत्रों वाले शिव की हम पूजा करते हैं। हमारा शरीर उत्तम गंध से युक्त स्वास्थ्य बढ़ाने वाला हो। खरबूजे की भांति हम मौत से छूटकर अमृत को पाएं)।

मरुस्थल से तात्पर्य : मरुस्थल जो कि मुझ बालू मिट्टी की धरती है के लिए अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त शब्द है डेजर्ट (Desert)। व्यापक तौरपर इस शब्द

का प्रयोग उजाड़ स्थान के लिए होता है। कवियों ने इस शब्द को वह गरिमा प्रदान की है जैसा श्रेय तो कुछेक शब्दों को ही प्राप्त है। अर्थ सीमित करते हुए हम वैज्ञानिक संदर्भ में मरुस्थल के लिए कह सकते हैं – 'पृथ्वी (और अब तो मानव द्वारा ज्ञान लिये गये आकाश के वे उपग्रह तथा ग्रह) स्थित वे स्थल जहाँ धूप-धूल-धक्कड़ है, पानी का वहाँ अभाव है। हाँ सम्भावना है कि ऐतिहासिक या प्रागैतिहासिक काल की किसी नदी के टूटे फूटे पाट यहाँ वहाँ हों। ये स्थान कर्क रेखा के आस-पास हैं तो मकर रेखा के पास भी। पृथ्वी का पाँचवाँ हिस्सा मरुस्थली है। दोपहर में असहनीय आग-सी झुलसन विकिरित करती भूमि, तो रात में बर्फ जमा दे ऐसी ठण्ड। सहारा मरुस्थल का तापमान तो एक बार 58 डिग्री सेल्सियस का चिह्न छू गया था। पृथ्वी का छठवाँ भाग घेरे यह बालू भूमि की बस्ती विश्व के मानचित्र में 15^0 से 35^0 विशुवत् रेखा के उत्तर में फैले एक पट्टे में स्थित है।

तुम्हारा प्रश्न स्वाभाविक है कि स्पष्टतया हम किस भौगोलिक स्थल को मरुभूमि कहेंगे? सच में उत्तर इतना स्पष्ट है भी नहीं। मौसम को मानदण्ड मान कर हम एक व्यावहारिक सीमा निर्धारित करते हैं। मरुस्थल वह भूमि कहलाती है जहाँ कि वर्ष पर्यंत तापमान के मान बहुत अन्तर लिए होते हैं जबकि बरसात की मात्रा अत्यल्प होती है। शुष्कता (aridity) शब्द मरु के संबंध में प्रायः उपयोग में आता है। शुष्कता एक माप बन जाए इसलिए एक सूत्र परिभाषित किया गया है। यह परिमाण शुष्कता सूचकांक (Index of Aridity) कहलाता है

$$\text{शुष्कता सूचकांक} = \frac{\text{वार्षिक वर्षा (मिली मीटर में)}}{\text{माध्य वार्षिक तापमान (डिग्री सेल्सियस)} + 10}$$

जिस स्थल का शुष्कता सूचकांक मान 5 से कम हो वह मरुभूमि क्षेत्र के अंतर्गत वर्गीकृत होता है। इसके अतिरिक्त वानस्पतिक कारण भी क्षेत्र को रूखा-सूखा या हरा-भरा बनाते हैं। अक्सर मरु की काली छाया पास के उपजाऊ

क्षेत्रों पर फैलने लगती है – यदि ऋतु में यकायक या क्रमबद्ध तौर पर परिवर्तन आ जाय, पवन बालू को उड़ाकर पास के क्षेत्रों में बिछाये, पेड़ों की कटाई, खेती-बाड़ी के काम में लाये जाने वाले अवैज्ञानिक तरीके, खूब चराई और पशुओं के खुरों से जमी हुई धरातलीय मिट्टी का लगातार टूटना हो तो ये जैविक कारण बन जाते हैं जो एक समय की उर्वरा भूमि को बंजर बना देते हैं। समुद्री हवायें अपने साथ में किनारे की मिट्टी भी लाती हैं। यह मिट्टी भी रूकावट न होने पर दूर-दूर तक कालांतर में फैलती जाती है।

तुम्हारा प्रश्न अच्छा है कि जैसे बालू हरियाले क्षेत्र को लील जाती है ऐसा ही विपरीत तौर पर भी तो कुछ होना चाहिए कि कोई प्रक्रिया हो जो बालू के विस्तार को लील जाय। हम बालू की प्रकृति और उपलब्धता के बारे में जैसे ही जानेंगे तो पायेंगे कि उसका पदार्थ इतनी आसानी से क्षय नहीं होता। अब, अच्छा होगा कि हम जान लें कि वह पदार्थ कहाँ से आता है, किस दर से वह आ रहा है और क्या दर है जिससे नष्ट हो रहा है या कहीं जा रहा है। पृथ्वी के उत्पत्ति काल में बालू नहीं थी। किसी स्थान की बालू मिट्टी की आयु वहाँ की चट्टानों से कम होती है। विशाल बालू के भण्डार पृथ्वी की उम्र की तुलना में हाल ही के हैं। सामान्य तौर पर पत्थर की चट्टान पर जब बरसात गिरती है, गर्मी-सर्दी से वह फैलती-सिकुड़ती है और पवन के थपेड़े पड़ते हैं तो वह टूटती है। चट्टान से टूटे टुकड़े नरम होते हैं। ये फिर से इन्हीं प्रक्रियाओं से टूटते हैं। ये बड़ी संरचनाएँ शनैः शनैः टूट कर संघटक पदार्थों में परिवर्तित होती हैं। इन पदार्थों में से भी वे जो कि कठोर हैं वे तो लम्बे काल तक बने रहेंगे मगर भंगुर पदार्थ छोटे होते हुए इतने हल्के हो जायेंगे कि उन्हें पवन बहा कर बहुत दूर ले जाय। मरुस्थल में वही पदार्थ टिकता है जिस पर लगभग गोल आकार प्राप्ति के बाद मौसम के प्रभाव तोड़-फोड़ करने वाले नहीं होते, रासायनिक अभिक्रियाएँ उन पर कोई विशेष परिवर्तन नहीं लातीं, आपस में टकरा कर वे जल्दी-जल्दी चूर-चूर नहीं हो जाते। पृथ्वी में पाए जाने वाले खनिजों में क्वार्टज वह खनिज हैं जो अभी बताए गुणों को धारण किए हुए हैं। बालू में अधिकतम मात्रा इसी खनिज की है

इसीलिए मरुस्थल दीर्घकालीन होते हैं।

भौगोलिक स्थिति : भारतीय मरुस्थल का अधिकांश हिस्सा राजस्थान राज्य में स्थित है (चित्र 1.2)। राजस्थान की भौगोलिक स्थिति 20⁰ 3′ से 30⁰ 12′ उत्तरी अक्षांश और 69⁰ 30′ से 78⁰ 17′ पूर्वी देशांतर के मध्य हैं वस्तुतः कर्क



चित्र 1.2

रेखा राजस्थान के दक्षिणी भाग को छूती हुई गुजरती है। राजस्थान की पश्चिमी सीमा पाकिस्तान देश से लगी हुई है। इस प्रदेश का जलवायु एक-सा नहीं है और इसे गर्म शीतोष्ण कटीबंधीय तौर का कहा जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय सीमा से लगे हुए जिले शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क जलवायु के हैं। तापक्रम की दृष्टि से जैसलमेर, बाड़मेर, गंगानगर जिले का दक्षिणी भाग, जोधपुर और बीकानेर के पश्चिमी भाग शुष्क क्षेत्र में आते हैं। जबकि अर्द्ध शुष्क जलवायु जालोर, पाली, झुनझुनु, सीकर, नागौर, चूरू आदि जिलों के बहुत सारे भाग में विस्तृत हैं। राजस्थान के मैदानी इलाके को दो भागों में बाँटा गया है – थार और बागड़। मरुस्थल थार के पूर्वी क्षेत्र में स्थित है। मोटे तौर पर अरावली पर्वत श्रेणी के उत्तर पश्चिम और पश्चिम में फैला हुआ भाग रेतीला है। भारतीय मरुस्थल, 'मरुस्थली', 'थार भूमि' के नाम से भी जाना जाता है। राजस्थान के इस क्षेत्र में उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की ओर की हवाओं के समानान्तर फैले तलवार की आकृति के बालू टीबे (टीले या ढूह या धोरे) हैं। अर्द्धचन्द्राकार बालू के ढूह (टीबे) मरुभूमि के उत्तरी भाग में हैं। भौगोलिक तौर पर तय करें तो भारत के इस मरुस्थल की स्थिति 24° तथा 30.5 उत्तर एवं 70 तथा 72.6 पूर्व के मध्य है। इस मरुभूमि का क्षेत्रफल 90,000 वर्ग मील माना जाता रहा है। कृषि की दृष्टि से मिट्टी की गुणात्मकता बुरी है। बालू मिट्टी का एक छत्र राज्य मीलों तक नजर आता है। इसके टीबे या ढूह 20 से 200 फुट तक ऊँचाई ले लेते हैं। बरखान कोटि के टीले जैसलमेर व बाड़मेर जिलों में बहुतायत में हैं। पथरीला मरुस्थल जैसलमेर, जोधपुर के फलोदी क्षेत्र तथा बीकानेर के उत्तरी भाग आदि स्थानों में देखा जा सकता है। अब मैं पर्यावरण को मुख्यतया प्रभावित करने वाले घटकों की चर्चा करूँगी।

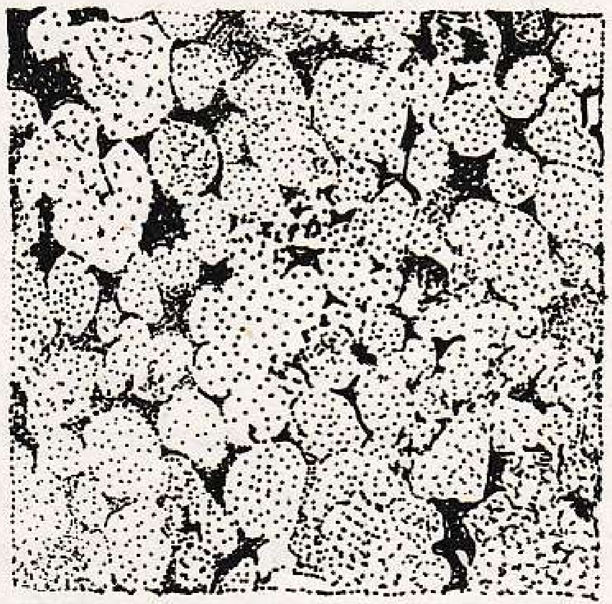
जलवायु : भारतीय-मरुस्थल क्षेत्र में सामान्यतया फरवरी से अक्तूबर माह तक दक्षिण-पश्चिम की ओर से पवन प्रवाहमान रहती है। औसत तौर पर इसकी चाल 8-10 किलोमीटर प्रति घण्टा होती है। जोधपुर, बाड़मेर, बीकानेर, जैसलमेर, गंगानगर आदि जिलों में पवन तीव्रता लिए रहती है। मई की गर्मी में तेज हवायें,

आँधियाँ प्रायः चलती हैं। पवन की तब चाल 20 किलोमीटर प्रति घण्टा तक बढ़ जाती है। प्रायः तीसरे पहर बेरोमीटर में पारा गिरता जाता है और तब कोई भी देखेगा कि आकाश पीला पड़ता जा रहा है और कभी-कभार तो वह इतना काला हो जाता है कि पास की चीजें भी नहीं दिखती। अपनी प्रखरता में सूर्य अप्रैल से लगातार वृद्धि करता है। मई में वह असह्य हो उठता है। दिन का तापमान मई-जून में 40 से 45 अंश सेल्सियस को भी छू लेता है। ऐसे में आर्द्रता तो 1% तक घट जाती है। लू का प्रकोप जून में बढ़ जाता है। वैसे यहाँ पर अधिकतम हवा की चाल 140 किलोमीटर/घण्टा भी आँकी जा चुकी है। रेत भरी आँधियों का औसत यहाँ लगभग एक वर्ष में तीस है। शुष्क वातावरण, धरती पर वनस्पति तथा अन्य अवरोधों का अभाव एवं बालुई मिट्टी के ऊष्मीय गुण रात्रि में तेजी से अपनी गर्मी को आकाश में दीर्घ तरंग दैर्घ्य के विकिरणों (अवरक्त या इन्फ्रारेड) के रूप में फेंकते हैं। रात यहाँ ठण्डी और सुहानी होती है। नवम्बर माह के बाद वायु का प्रकोप प्रायः समाप्त हो जाता है। जनवरी माह में सबसे अधिक ठण्ड होती है। तापमान कभी-कभार हिमांक से नीचे आ जाता है। सर्दियों में यहाँ पाला पड़ने की स्थिति भी अक्सर हो जाती है।

आर्द्रता एवं वृष्टि : मरुस्थलीय प्रदेश में वर्षा अनियमित और विरल है। सीमांत शुष्क प्रदेश में वर्षा का औसत 25 सेंटीमीटर प्रतिवर्ष से भी कम ही बैठता है। जैसलमेर में 1963-1970 के 7 वर्षों में तो बिल्कुल बरसात नहीं हुई। कहते हैं कि तब बच्चे मेघ और उसमें नहाना कैसा आनन्दमयी होता है यह अनुभव नहीं कर पाये थे। मगर फिर 1970 में अतिवृष्टि ने वहाँ बहुत नुक्सान पहुँचाया। वैसे अरब की खाड़ी से उठे बादलों की पहुँच इधर ना जैसी है। दक्षिण-पूर्वी मानसून भी इधर आते-आते क्षीणकाय हो जाता है। घटाएँ एकत्रित न हो पातीं उन्हें अक्सर पवन बिखेर देता है। जुलाई एवं अगस्त वृष्टि के महीने हैं। यहाँ पर आर्द्रता के मान अगस्त में बढ़े-चढ़े होते हैं जबकि अप्रैल में वह अत्यल्प मात्रा में होती है। भारत के उत्तर स्थित पहाड़ी क्षेत्रों में भारी हिमपात होने पर यहाँ भी शीतलहर की स्थिति आ जाती है। चूँकि दिसम्बर से फरवरी माह के मध्य सूर्य

की स्थिति दक्षिणी गोलार्द्ध की ओर होती है अतः यहाँ ठण्ड भी कड़ाके की ही होती है।

मृदा : यदि कोई यहाँ की मिट्टी का नमूना ले तो पायेगा कि 90-95 प्रतिशत तक वह "बालू" कोटि की रेत है और लगभग 5 प्रतिशत भटियारी। मिट्टी में जैव पदार्थों की उपस्थिति तो बहुत ही कम है। सेण्डस्टोन मूल स्रोत से बनी हुई इस धरती की जलधारण क्षमता भी अत्यल्प है। प्रायः धरती लाल बालुई है कुछेक क्षेत्रों में भूमि लवणीय है। बालुई मिट्टी कपड़ों पर चिपकती नहीं है। मौसम सुहावना हो तो इस पर नंगे पाँव चलना बहुत अच्छा लगता है। दूर-दूर तक बिछी लहराती भूमि आँखों को सुहाती है। हैं भी गोल-गोल से कण, जो चिपके-चिपके नहीं हो कर अलग-थलग हैं (चित्र 1.3)।



चित्र 1.3 – बालू के कण

नीचे दी गई सारणी में बालू के नमूनों से प्राप्त भौतिकीय गुणों को हम दे रहे हैं। इन गुणों की चर्चा हम आगे के अध्याय में करेंगे। भौगोलिक, स्थलाकृतिक और मौसम संबंधित कारणों का ही सम्मिलित प्रभाव है कि पश्चिमी राजस्थान में चारों ओर बालू और उसके टीबे स्थित हैं। मरुस्थलीय क्षेत्र में घग्घर और लूनी बरसाती नदियाँ हैं। कुछ बालू के टीबे स्थाई होते हैं तो बहुत सारे अस्थाई। स्थाई ढूहों पर हरियाली नजर आ सकती है। सेनिया नाम की घास थार मरुस्थल के कुछ क्षेत्रों में पाई जाती है। ढूहों पर आक और फोग की झाड़ियाँ भी यत्र-तत्र नजर आती हैं। भौगोलिक दृष्टि से ही हमारे मरुस्थल को कुछ खण्डों में बाँटा गया है – (क) जैसलमेर क्षेत्र : यह सबसे अधिक सूखा प्रदेश

है। इंदिरा गांधी नहर आ जाने से अब इस क्षेत्र का कायापलट हो रहा है; (ख) बाड़मेर क्षेत्र : पाकिस्तान की सीमा से लगता हुआ यह इलाका प्रायः शुष्क है। इस क्षेत्र में खनिज सम्पदा प्रचुर मात्रा में है; (ग) नागौर क्षेत्र : यह क्षेत्र बढ़िया किस्म के इमारती पत्थर, जिप्सम तथा नमक उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है; और (घ) लूनी क्षेत्र : यह प्रायः समतल मैदानी क्षेत्र है। यहाँ पर बरसाती फसलें भरपूर होती हैं।

पीछे के दो-तीन पृष्ठ पढ़ने के बाद तुम्हारी जिज्ञासा होगी कि भूमि के मरुस्थल होने के लिए जो बातें पहले कही गई हैं वे तो थार मरुस्थलीय क्षेत्र पर ठीक नहीं बैठती। फिर इस भूमि को मरुस्थल कहना उचित रहेगा? वैज्ञानिकों का एक समुदाय इसे मरुस्थल कहना अनुचित भी मानता है। मरुस्थल में जल का सर्वाधिक अभाव होता है, यहाँ का जलवायु भी उतना शुष्क नहीं और ऊपरी वायुमण्डल में तो पर्याप्त आर्द्रता भी है। माना कि यहाँ आबादी घनी नहीं है फिर भी यह कोई उजाड़ या बंजर स्थान नहीं है। यहाँ पेड़ पौधे प्रायः पाए जाते हैं। पशु पालन यहाँ का मुख्य व्यवसाय है। ये सारी बातें स्पष्ट इंगित हैं कि इस भूमि को "मरुस्थल" कहना अनुचित है। माना कि रूढ़ अर्थ में स्थल के लिये यह शब्द भ्रामक है फिर भी यहाँ रेतीले टीले दूर-दूर तक फैले हुए हैं। यहाँ पर बस्तियाँ छुट-पुट हैं। ढाणियों* में रहने वाले, यहाँ के मूल निवासी प्राकृतिक कठिनाइयों को झेलते रहते हैं। कुछेक प्रेक्षण तो हमें यह भी बता रहे हैं कि कच्छ से लेकर दिल्ली की ओर बालू विस्तार बढ़ता प्रतीत होता है।

लुप्त सरस्वती : भूगर्भ शास्त्री इस बात पर एकमत हैं कि प्रागैतिहासिक काल में वर्तमान राजस्थान का पश्चिमी एवं उत्तरी-पूर्वी हिस्सा टेथिस महासागर** में डूबा हुआ था। अरावली पर्वतमाला गोण्डवाना लेण्ड*** का भाग थी। समाज शास्त्रियों और मानव वैज्ञानिकों ने यहाँ से प्राप्त पुरावशेषों का अध्ययन कर पाया

* ढाणी – मरुस्थल में कुछ घरों की बस्ती।

** प्रागैतिहासिक (प्रीहिस्टोरिक) समुद्र। चित्र देखें जहाँ भूर्गभशास्त्रीय काल दिखाए गए हैं।

*** प्रागैतिहासिक स्थल।

सारणी

थार मरुस्थल की बालू के भौतिकीय गुण

वर्णन	आभासी घनत्व	आपेक्षिक घनत्व	प्रधान कणों का आकार	पारगम्यता	ऊष्मा चालकता	वैद्युत चालकता	आपेक्षिक परा-वैद्युतांक	pH-मान	औसत गोलाई	खनिज एंव रसायन
भूरा रंग मध्य आकार की बालू मिट्टी	1.52 ग्राम/घन सेंटीमीटर	2.6	130.140 (10^{-4} सेंटीमीटर)	5.50 (10^{-4} सेंटीमीटर/सेंटीमीटर/सेल्सियस)	6×10^{-4} केलोरी/सेंटीमीटर/सेकण्ड/सेल्सियस	0.20 (महो/सेंटीमीटर)	2.8 (9.5×10^{9} हर्टज पर)	7.50	0.75	वातोड़ बालू (वायु से उड़ी) (क) जिसमें कुछ मात्रा में मिट्टी भी है। (ख) नमूना अलावणिक एवं अक्षारीय है। (ग) समूह की जलधारण क्षमता प्रतिशत 30 (भार सापेक्ष)। (घ) बालू की संरध्रता का परास 35 से 45% है।

है कि यह क्षेत्र आदिकाल में सम्पन्न था। सिरोही जिले की पहाड़ियों में मिले गुफा चित्र उस समय की मानव सभ्यता का बयान करते हैं। पुरातत्व विशेषज्ञों का अनुमान है कि ये गुफा चित्र 3000 से 30000 वर्ष मध्य के हो सकते हैं। संस्कृत भाषा के शास्त्रों में उल्लेख, स्थानीय साक्षियाँ यह स्पष्टतया बयान करते हैं कि घग्घर चितांगा नदियों के सूखे पाटों के आस-पास का स्थान समृद्ध संस्कृति लिया ब्रह्मव्रत प्रदेश था। आज जहाँ श्री गंगानगर शहर बसा हुआ है उसके आस-पास के क्षेत्र में बारहमासी 'सरस्वती' नदी प्रवाहित थी। यहाँ खुदाई से प्राप्त टेराकोटा एवं अन्य पुरातत्व की दृष्टि से उपयोगी अवशेष ईसा पूर्व के कालों के हैं। ऋग्वेद काल की वैदिक रचनाएँ इन्हीं स्थानों पर हुई थीं। राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्र में पाकिस्तान की सीमा से लगा हुआ कस्बा सांचोर उस समय की विख्यात नगरी सत्यपुरी थी। यह इतिहास प्रसिद्ध नगर सरस्वती नदी के किनारे था। इससे स्पष्ट होता है कि सरस्वती नदी बहुत लम्बी और चौड़ी थी तथा वह इधर से होकर कच्छ की ओर बढ़ती थी। बीकानेर, मरुभूमि में एक प्रसिद्ध शहर है। उससे 38 किलोमीटर दूरी पर एक गाँव है – 'कोलायत'। वहाँ अब भी एक प्राचीन झील है। इस झील में स्नान करना शुभ माना जाता है तथा यहाँ वर्ष में एक बार मेला लगता है। कहते हैं, यह 'कपिल मुनि' की तपोस्थली थी। गंगानगर जिले में की गई कालीबंगा की खुदाई पुरातत्वविदों के लिए शोधकार्य की पर्याप्त सामग्री लिए थी। यहाँ सिन्धु घाटी की सभ्यता तथा उससे भी पहले की सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इस क्षेत्र में तब नगरीय सभ्यता थी और ये स्थान सामरिक दृष्टि से सुरक्षित थे। खुदाई के कुछ स्थल तो जुते हुए खेत ही हैं। इन खेतों से पता चलता है कि तब दो प्रकार की फसलें उगाई जाती थीं। तब के लोगों को बागवानी का भी शौक था।

यदि तुम राजस्थान के मानचित्र पर नजर डालो तो वहाँ पश्चिम में एक प्रमुख नदी है – 'लूनी'। इस नदी के आस-पास के क्षेत्रों में पुरातत्व विभाग द्वारा की गई खुदाई में मध्य पाषाण काल के औजार मिले हैं। आज की बाड़मेर, जोधपुर पट्टी में एक समय में देश के संस्कृत एवं विद्या में अग्रणी मानवों की

बस्तियाँ थीं। जालौर जिले में एक प्रसिद्ध कस्बा है – 'भीनमाल'। आज भी यह धनाढ्यों की नगरी है। सुप्रसिद्ध संस्कृत कवि 'माघ' की यह जन्म भूमि है। यहाँ की खुदाई में मिली सामग्री भी ईसा पूर्व के कालों में सुसमृद्ध संस्कृति का बयान करती है। बाड़मेर जिले में एक स्थान है तिलवाड़ा जो कि पशु मेले के लिए आज एक प्रसिद्ध स्थान है। वहाँ पुरातत्वविदों की पाषाण युगीन (era) औजार मिले हैं। ये औजार कलात्मक भी हैं। लूनी नदी जो कि अब बरसाती नदी है, के प्रवाह के साथ-साथ बढ़ें तो दोनों ओर अक्सर हमें दूर-दूर तक बालू स्तूप नजर आएंगे। नदी के पास ही एक टीले की खुदाई की गई। धरातल से एक फुट गहराई में मिट्टी के भाण्ड और नीचे जाने पर विभिन्न उपयोग के मिट्टी के बर्तन मिले थे। अवशेषों के अध्ययन से प्रकट है कि उस समय पशुपालन एवं शिकार प्रमुख कार्य थे। पाये गए अवशेषों में घरेलू पशु कुत्ते, बकरी के अतिरिक्त भेड़िये और हिरण भी मिलते हैं। स्पष्ट है कि ये सारा ही प्रदेश हरा-भरा और वन सम्पदा से सम्पन्न था। मैदान और पहाड़ों पर घने पेड़ थे। धन-धान्य से भरपूर ये स्थान उजाड़ कैसे हो गए इस पर मैं तुम्हें आगे बताऊँगी।

मरुस्थल में जिसका अभाव होता है उसमें प्रमुख है – जल स्रोत। सामान्यतया बादलों की विरलता रहती है तथा अवसर पर घटाएँ घटा टोप होने से पहले ही बिखर जाती हैं। ऐसे में बहुत दूर की नदियों से और बांधों से नहर द्वारा वहाँ पानी लाया जाय एवं दूसरा विकल्प हो सकता है कि पाँवों तले की धरती को फाड़कर गहराई से पानी निकाला जाय। थार मरुस्थल में क्रमशः दोनों ही प्रयास जो भगीरथी और अर्जुन प्रयास हैं किए गए हैं। दुनिया के सर्वेक्षण बताते हैं कि पृथ्वी के नीचे आधा मील की गहराई में एक करोड़ घन मील आयतन पानी भरा हुआ है। इतने जल को आज एकत्रित करने में दुनिया की सारी नदियों में 132 वर्षों में बह चुका पानी एकत्रित करना होगा। थार मरुस्थल की धरती में ही जब कि बारह मासी विशाल सरस्वती और हकारा नदियाँ लुप्त हुई हैं फिर तो यहाँ भूगर्भ जल की कमी नहीं होनी चाहिए। लम्बे अरसे तक लम्बे मार्ग में पानी ढोकर समुद्र तक ले जाने वाली इन नदियों के पेंदे से पानी धरातल

में गहरे और गहरे चूचू कर पहुँचा होगा। सच में, वही पानी धरती के नीचे चट्टानों के बीच अब सुरक्षित है। जैसलमेर और पोकरण नगरों के मध्य हुए भूभौतिकीय सर्वेक्षण के आधार पर ज्ञात हुआ है कि इनके बीच 112 किलोमीटर लम्बे क्षेत्र में गहराई पर मीठे जल के भण्डार उपलब्ध हैं। उपयोगी होने से, नलकूप, गहरे कुएँ तथा बावडियाँ मरुस्थल में अतिसुरक्षित स्थान होते हैं। शेखावाटी क्षेत्र में यदि कोई निकले तो मरुस्थल में उसे चार मीनारें खड़ी दिखेंगी, यह संकेत है कि वह स्थान एक कुआँ है।

मूल निवासी : राजस्थान के मूल निवासियों में अब भी लगभग 15 प्रतिशत जनजाति का है। ईसा पूर्व 1000 वर्ष के काल में यहाँ प्रमुखतया मीना और भील रहते थे। ऐसा समझा जाता है कि आर्यों से मिलकर बने क्षत्रिय वर्ण से 36 राजपूत वर्ग बने। भौगोलिक तौर पर अरावली श्रेणी के ऊपर की दिशा में स्थित सारा ही क्षेत्र शुष्क या अर्द्धशुष्क कोटि का है। अस्पृश्यता का अभिशाप तो अब मरु क्षेत्र में नहीं-सा है मगर यहाँ जातिगत भेद स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

तुम्हें यह जानकर प्रसन्नता होगी कि थार मरुस्थल के स्त्री और पुरुष दोनों ही परिश्रमी हैं। इस भूमि की परिस्थितियाँ ऐसी नहीं कि एक लिंग शाषित रहे और दूसरा शोषक। घर से बाहर भी उतनी ही कठिन जिंदगी है जितनी घर पर। एक समय तो यहाँ स्त्रियों की लम्बी पंक्ति सिर पर पानी के दो घड़े रखे और बगल में भी कोई वस्तु लिये लम्बी सुनसान भूमि को पार करती हुई नजर आती थीं। पानी उन्हें पाँच-सात किलोमीटर से भी लाना पड़ता था। "धोरों की धरती" में गर्मी में अधिकांश कुँओं में पानी नहीं रहता है। कुछ कुएं ही मीठे पानी के मिलते हैं। पानी लाते समय स्त्री दल सस्वर राग में लोकगीत गाता हुआ चलता है।

मरुस्थल के निवासी धर्म भीरू हैं और उनके बहुत सारे कार्यकलाप श्रद्धा एवं अंधविश्वास से जुड़े हुए भी हैं। मेलों में जाना उन्हें विशेष तौर पर पसंद है। कुछ फजूलखर्ची की खरीददारी तो मेलों में ही होती है। यहाँ की स्त्रियों के गले में लटक रही कण्ठी में चांदी या सोने की पत्री पर खुदा हुआ चित्र लोकदेवता

"रामदेव" और "गोगा" का होता है। जोधपुर-जैसलमेर के रास्ते में एक स्थान है "रणूजा" या "रामदेवरा", वहाँ मेले के अवसर पर श्रद्धालुओं की भारी भीड़ जुड़ती है। इन्हीं लोकदेव को मुसलमान "रामापीर" कहते हैं। ये हिन्दु और मुसलमान दोनों वर्गों के लिए समान श्रद्धा के देव हैं।

स्त्रियों के वस्त्र रंगीन तथा कढ़ाई के काम किए हुए होते हैं। मेरून, लाल, पीला, केसरिया रंग की ओढ़णियाँ आधे ढके सिर पर खूब अच्छी लगती हैं। घूंघट प्रथा सवर्णों में मुख्यतया थी और उसका अब भी कुछेक द्वारा पालन होता है। मांगलिक अवसरों पर छपाई का काम किए हुए नए वस्त्र पहने जाते हैं। चुनरी, लहरिया, पोमचा आदि कीमती किस्म की ओढ़णियाँ होती हैं। सामान्यतया स्त्रियाँ घाघरा, ओढ़णा और कांचली पहनती हैं। कांचली वक्ष को ढकती है तथा कसकर पीछे की ओर डोरी से बांधी जाती है। स्त्रियों को गहने पहनने का शौक है।

उनके भाल पर लटकता हुआ 'बोर' होगा, कानों में सोने-चांदी के सांकल (जंजीर) बंधे लोंगे, नाक में फीनी या नथ, गले में हसुली या जंजीर, बाजू में चूड़ा जो कि कभी हाथी दांत का हुआ करता था अब सिंथेटिक पदार्थ का होता है, हाथ में चूड़ी-गोखरु, कमर में करधनी और पाँव में कड़े। तीज-त्योहार पर ये हाथों और पाँवों में मेंहदी लगाती हैं। शादी ब्याह वे अवसर हैं जबकि पूरा गाँव या सारी छोटी बस्ती (ढाणी) भोज में आमंत्रित होती है।

थार मरुस्थल के निवासियों का खान-पान सादा और स्वच्छता लिए है। सवर्ण लोग शाकाहारी हैं जबकि क्षत्रिय और शुद्र मांसाहार भी करते हैं। बाजरा, जौं और गेहूँ का प्रयोग खाद्यान्न के रूप में होता है। काम-काज पर निकलने से पहले सुबह व्यक्ति भारी कलेवा करते हैं। खेतिहर और कारीगर बाजरे की मोटी रोटी (सोगरा), घाट (छाछ में पकाया बाजरा या ज्वार का दलिया) या राबड़ी (छाछ और आटे से बना तरल खाद्य) काम पर जाने से पहले भरपेट खा कर निकलते हैं। यहाँ प्याज और लाल मिर्च की चटनी भी मुख्य रूप से खाई जाती है। दोपहर को सिर पर रखी छबड़ी और गोद में बच्चे को टांगे हुए स्त्रियाँ पति के काम करने के स्थान पर जाती हैं। इसमें दिन का भोजन जैसे गर्म मोटी रोटी

(गेहूँ या बाजरा की), लाल मिर्च की खट्टी कचरी पड़ी चटनी, छाछ एवं ताजा तरकारी होती हैं। शाम का खाना भी कुछ इसी तरह का होता है। कुछ परिवार दिन में दो बार ही खाते हैं। साधारणतया मरु-वासियों के घरों में अधिक सामान नहीं होता है। रोजमर्रा के काम की कम से कम चीजें ही रखते हैं। किसी-किसी घर या झोंपडे में मुलतानी मिट्टी और कागज की लुगदी से बनी संदूक भी देखी जा सकती हैं। ये पारम्परिक तौर पर कपड़े या अन्य खाद्य वस्तुएँ, जिन्हें कि पालतू पशु न छेडें रखने के काम आती हैं। खटिया मूंज की होती है और इसका ढांचा स्थानीय बबूल या रोहिड़ा पेड़ की लकड़ी का बना होता है। कम चीजों से गुजारा करना और गरीबी में स्वाभिमान पूर्वक रहना कोई मरुवासी से सीखे। मरुस्थल के विस्तार में रहने वालों की मरुस्थल-सी असीम स्वतंत्रता है। वे मनमौजी और ईमानदारी से जीवन निर्वाह करने वाले जीवट लोग हैं, उन्हें आन-बान-शान प्यारी है।

वन्य-जीव : इतिहास बताता है कि अब से सत्तर-अस्सी वर्ष पहले यह प्रदेश शिकारियों के लिए आदर्श स्थान था। तब इस अभय क्षेत्र में बाघ, तेंदुआ, जरक, सियार, लोमड़ी, भेड़िया आदि बहुत संख्या में थे। थार मरुस्थल में अब भी काला हिरण, नील गाय, चिंकारा, सांभर, लंगूर, चीतल, खरगोश आदि देखे जा सकते हैं। प्रातः और संध्या काल में सेहल, गिलहरी आदि झाड़ियों में फुदकते दिखते हैं। कुछ वर्षों पूर्व तक विषधर जीवों का यहाँ आतंक था। अजगर, पाटागोह, नाग, वाइपर आदि यहाँ बहुतायत में थे। यहाँ के एक ग्राम्य देव नाग भी हैं। गाँव के बाहर की झाड़ियों या उनके आस-पास तीतर, बटेर, जंगली मुर्ग देखे जा सकते हैं। गाँव के पनघट, गूंदी या जाल जैसे पेड़ों पर कौआ, कबूतर, कमेड़ी, कोयल, बुलबुल, मैना, तोता, हरियलों का समूह नजर आता है तो किसी सूखे पड़े खेत की खेजड़ी या बबूल पर गिद्द खाती चिड़ा, बाज और बया आदि पक्षियों का ही वर्चस्व है।

थार मरुस्थल के निवासी मुख्यकर दयालु प्रकृति के हैं तथा धार्मिक मान्यता के अनुसार कुछ जीवदया व्रत का पालन करते हैं। पक्षियों को पर्याप्त मात्रा में

दाना-पानी डाला जाता है। तीतर-बटेरों को यहाँ अभयदान प्राप्त है। यहाँ का तीतर मटमेला ही नहीं बल्कि लुभावने रंग लिए भी होता है।

राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्र की बलुआ जमीन पर चिंकारा का समूह मुक्त भाव से विचरता नजर आएगा। बिश्नोई जाति के लोगों की बस्ती में काले हिरण निर्भय हैं। ये वहाँ पालतु पशु से हैं और जंगली घास तथा पेड़ों के पत्तों से गुजारा करते हैं। इन्हें पीने का पानी भी कम मात्रा में चाहिए। नील गायें यहाँ की खेती को नुक्सान पहुँचाती हैं जिन्हें खदेड़ने हेतु खेतिहर को रात में चौकीदारी करना आवश्यक हो जाता है। थार मरुस्थल के संदर्भ में दो पक्षियों का विशेष महत्त्व है। यहाँ का 'राज्य पक्षी' गोड़ावण तथा विरहण की साथिन कुरजां। गोड़ावण



चित्र 1.4 – गोड़ावण पक्षी

शर्मिला और संदेहशील पक्षी है। यह जमीन से चार फुट तक ऊँचा होता है (चित्र 1.4)। ये प्रायः समूह में रहते हैं। इस पक्षी का आहार वहाँ की सेवण घास,

छिपकली और कीट-पतंगे हैं। इस पक्षी की मादा प्रजनन हेतु सितम्बर माह में दूर निर्जन स्थान में चली जाती हैं। दिसम्बर माह में नवजात शिशुओं के साथ यह पुनः बस्ती में लौटती हैं। मरुस्थल स्थित सुदाश्री गाँव के पास इनकी रक्षा और वंश वृद्धि हेतु 1800 हेक्टेयर भूमि घेरकर सुरक्षित स्थान बनाया गया है।



चित्र 1.5 – प्रवासी पक्षी

क्रोंच परिवार का एक पक्षी कुरजां का सर्दियों में यहाँ समूह का समूह आता है। सारस जैसा यह पक्षी एक सवा फुट लम्बा होता है (चित्र 1.5)। इसका रंग हल्का सलेटी है मगर गर्दन काली होती है। इस पक्षी की चोंच हरी-सी होती है। यह तेज कर्कश आवाज करती है। उड़ान भरते समय इसकी टांगें और गर्दन खिंचकर लम्बे हो जाते हैं। कुरजां भी सतर्क रहने वाला पक्षी है। फसलों के नरम सिट्टे, घास, मेंढक, घोंघे इसके प्रिय व्यंजन हैं। परदेश से आये ये पक्षी सर्दी बीतते ही चीन, अफगानिस्तान की ओर उड़ जाते हैं। फलौदी के पास खींचन गाँव में इनका घना समूह होता है। अनेक शोधकर्त्ता उनके अध्ययन हेतु यहाँ प्रति वर्ष आते हैं।

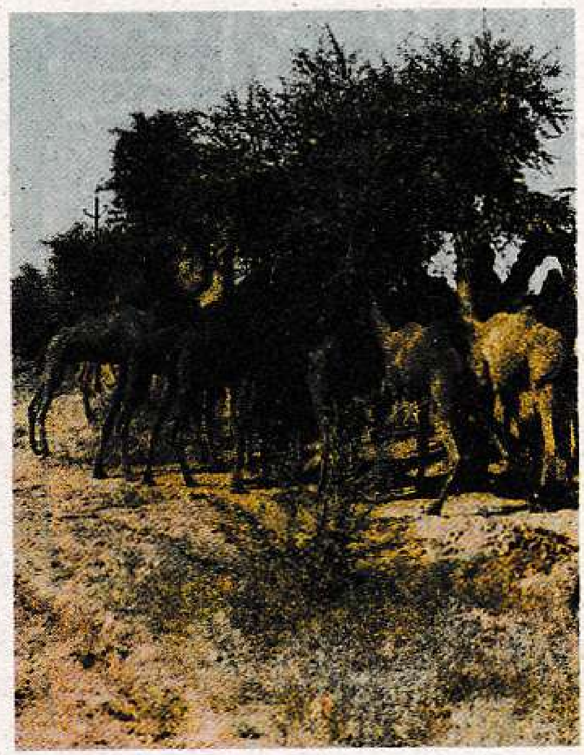
सन् 1985 में जैसलमेर जिले में बाबा भारती स्थान पर वे जीवाश्म प्राप्त हुए जिन्होंने पूरे विश्व को अपनी ओर आकृष्ट किया। ये डॉयनासौर विशालकाय जन्तु के फॉसिल चूना पत्थर व गहरे रंग के बलुआ पत्थर के हैं। अनुमान है कि ये साक्ष्य सोलह करोड़ वर्ष पहले की यहाँ की वानस्पतिक स्थिति का वर्णन करते हैं। जुरेसिक काल* में यह क्षेत्र घना जंगल था। विशालकाय जन्तुओं के विचरण और भोजन के लिए यहाँ पर्याप्त सुविधा थी। हाल की खुदाई में यहाँ पर ट्रायसिक काल** के जीवाश्म जिनमें मगरमच्छ, कछुआ और मछलियाँ हैं प्राप्त हुए हैं।

वनस्पति : तुम्हें यह जानकर प्रसन्नता होगी कि मेरी धरती वह स्थान है जहाँ से पर्यावरण रक्षा हेतु जन चेतना के आरंभिक साहसिक कार्य सम्पन्न हुए। वन सम्पदा की रक्षा से जुड़ा हुआ ऐतिहासिक नाम "अमरती देवी" (अमृता देवी) इसी धरती की संतान का है। अमरती देवी ने पेड़ों का जंगल बचाने के लिए राजाज्ञा की अवेहलना करते हुए अपने प्राणों की आहूति दे दी थी। कहते हैं कि मारवाड़ नरेश को महलों की सज्जा के लिए इमारती लकड़ी की आवश्यकता थी। खेजड़ी, रोहिड़ा जाति के वृक्षों की लकड़ी इस कार्य के लिए उपयुक्त थी। राजा की आज्ञा से उनके कारिंदे उस क्षेत्र में पहुँचे जहाँ घने वृक्ष थे। आधी रात में पेड़ों की कटाई आरम्भ की गई। कुल्हाड़ी की आवाज ने सोते हुए खेजरली गाँव वासियों की नींद में बाधा डाली। जागने पर उन्हें पता चला कि कोई उनके पूज्य वृक्षों को काट रहे हैं। सारा गाँव जंगल की ओर उमड़ पड़ा कि उनके हाथों से कुल्हाड़ियाँ छीन ली जायें। राजा के सिपाहियों ने ग्रामवासियों को दूर रहने की चेतावनी दी। प्राणों से भी अधिक प्रिय उन वृक्षों की कटाई उन्हें किसी परिस्थिति में स्वीकार्य नहीं थी। उनमें से एक महिला जिसका नाम 'अमरती' था वह एक खेजड़ी वृक्ष से लिपट गई और सिपाहियों को ललकारा – "पहले कुल्हाड़ी से यह शीश कटेगा और तब कटेगा वृक्ष का तना।" राजा के सिपाही

* प्रागैतिहासिक काल जो कि लगभग 20 करोड़ वर्ष पूर्व का है।

** प्रागैतिहासिक काल

दंभ में चूर थे। उसमें से किसी एक ने उस साहसी महिला का सिर तलवार से काट कर गिरा दिया। और तब वृक्ष तो कटते गये मगर उनके साथ गाँव के पर्यावरण रक्षक वाशिंदों के सिर भी कटते गये। मरुस्थल में हरी लकड़ी काटना वहाँ की परम्परा में अपराध माना जाता रहा है। सूखी लकड़ी ही जलाने या दस्तकारी के सामान बनाने के काम में ली जाती हैं। जब तक पुराने मूल्य और धार्मिक विचारों की रक्षा होती रही तब तक यहाँ की वन सम्पदा बनी रही। वस्तुतः वृक्षों की कटाई के कारण ही यहाँ पड़ने वाले दुर्भिक्ष अधिक कठिनाई वाले होने लगे।



चित्र 1.6 – खेजड़ी वृक्ष

थार मरुस्थल पूरा हरियाली विहीन नहीं है। बालू के ढूहों में यहाँ-वहाँ स्थाई पेड़ भी नजर आते हैं। इनमें प्रमुख है खेजड़ी (चित्र 1.6)। इसका वानस्पतिक नाम प्रोसोपिस सिनेरेरिया है। हमारे धर्म शास्त्रों में इसे शमी वृक्ष कहा गया है। यह वृक्ष ऊँचाई में बीस फुट तक जाता है मगर चौड़ा बहुत अधिक नहीं होता है। यह मरुस्थल का एक बहुपयोगी वृक्ष है। इसकी पत्तियाँ पशु का चारा होती हैं। इसकी फलियों से 'संगरी' की सब्जी बनाई जाती है। इसके तने की छाल दवाई के रूप में उपयोग में आती है। इसकी लकड़ी अच्छी किस्म की होती है। दरअसल, मरुदेश में कहावत है : गाँव-गाँव खेजड़ी, गाँव-गाँव गोगो। इसी तरह एक और भी उपयोगी वृक्ष है 'कूमट'। खेजड़ी की फलियाँ पतली और लम्बी होती हैं जबकि कूमट की फलियाँ चौड़ी और चपटी होती हैं। इन्हें भी कच्चा तोड़ लिया

जाता है। इन्हें उबाल कर सुखा देते हैं। इसकी सब्जी स्वादिष्ट होती है। 'गूंदा' या 'लसोड़ा' भी मरुस्थल में अनेक स्थानों पर होता है। इसके पत्ते गोल-गोल और खुरदरे होते हैं। इसका फल अचार तथा सब्जी हेतु उपयोग में लिया जाता है। 'कैर' की झाड़ी घनी होती है। इसका वानस्पतिक नाम केपेटिस डेसिडुआ है। इसके फूल आयुर्वेदिय गुण लिए होते हैं और अनेक औषधियों के उपयोग में लिए जाते हैं। कैर के कच्चे फलों का अचार डाला जाता है। इन्हें उबाल कर सुखा दिया जाता है और सूखे कैरों की सब्जी बनाई जाती है। वस्तुतः मरुप्रदेश की मिश्र सब्जी 'पचकूटा' पाँच फलियों-फल से बनी होती है : कूमट, कचरी, सांगरी, कैर और गूंदा। अधिक समय तक टिकने वाला यह स्वादिष्ट साग-सब्जी स्वास्थ्यवर्द्धक है। बरसात हो जाने पर वहाँ बहुतायत में अनाज और फल तथा दलहन किस्म का अनाज उगता है। बीकानेर में तो एक कहावत है – मोठ, मतीरा, बाजरी, काचर, खेलर खांण। घर में धाड़ा नीपजै, बरसाले, बीकांण।

मरुभूमि में 'बेर' की झाड़ियाँ बहुतायत में विद्यमान हैं। इस कांटेदार झाड़ी पर लाल रंग के फल जो खट्टे मीठे होते हैं, लगते हैं। इस कांटेदार झाड़ी की बाड़ लगाई जाती है। इसकी सूखी पत्तियाँ भेड़, बकरियों का प्रिय चारा है। जोधपुर स्थित काज़री केंद्रिय रुक्ष अनुसंधान केंद्र में हाल ही में बेरी की बहुत सारी किस्में विकसित की गई हैं जोकि बड़े और मीठे फल दें तथा स्थान के अनुकूल भी हों। थार मरुस्थल में ही पाया जाने वाला एक और वृक्ष है 'जाल'। इसकी झाड़ी होती है तथा कटाई-छटाई पर यह सामान्य आकार का वृक्ष हो जाता है। ऊँट इसकी पत्तियाँ बड़े चाव से खाते हैं। इसके फल छोटे और पकने पर मीठे रसीले होते हैं। स्थानीय भाषा में इन्हें 'पीलू' कहते हैं। 'देसी बबूल' मरुस्थल का एक उपयोगी पेड़ है। इसकी पत्तियाँ छोटी-छोटी होती हैं और डाली पर तीखे लम्बे शूल होते हैं। मरुवासी प्रातःकाल इससे तोड़ी हुई ताजी डंडी से दातून करते हैं। वृक्ष की छाल बहुपयोगी है। इसकी फलियाँ खाद्य पदार्थ हैं। नीम अपने औषधिय गुणों के कारण जगत् विख्यात है। मरुस्थल में जहाँ पानी होता है वहाँ प्रायः नीम का पेड़ होता है। कहीं-कहीं पीपल भी देखने में आता है। नीम

का मुख्य गुण खून को स्वच्छ करना है। इसकी छाल घिस कर चर्म पर लगाने से वहाँ उठी फुंसियाँ ठीक हो जाती हैं। मरु क्षेत्र में बरसात का जल एक छोटी-सी तलैया जिसे नाड़ी कहते हैं में एकत्रित किया जाता है। यह पानी पीने, कपड़े धोने, और पशुओं को पिलाने के काम में लिया जाता है। स्थानीय लोग इसमें नहाते भी हैं। एक समय तक इनमें एक कृमि जिसे 'नारु' कहते हैं, बहुतायत में हुआ करते थे। ये कृमि पीने के पानी द्वारा पेट में चले जाते हैं या चमड़ी काट कर भी शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। शनैः शनैः ये लम्बी तांत के रूप में व्यक्ति की चमड़ी के नीचे फैलते हैं। बड़े होने पर ये चमड़ी को काट कर बाहर की ओर मुँह निकालते हैं। वह स्थान दर्द करने लगता है। यह एक साथ बाहर नहीं आता। रोज थोड़ा-थोड़ा बाहर आता है और पूरे नारु को बाहर निकलने में 1-2 माह लग जाते हैं। तब हाथ पाँव या अन्य अंग में सूजन आ जाती है। वह व्यक्ति कोई शारीरिक कार्य नहीं कर पाता है। इसके उपचार हेतु नीम के पत्तों की लुगदी की पट्टी उस स्थान पर लगाई जाती है। इससे नारु जल्दी निकलता है तथा वहाँ पीड़ा भी कम होती है। नीम का फल निमौली होता है। इसे पीस कर तेल निकाला जाता है जो कि क्रमिनाशक एवं चर्म रोग में उपयोगी है। तुम तो जानते ही हो कि नीम से बनी विविध वस्तुओं के पेटेण्ट को लेकर अन्तर्राष्ट्रीय जगत में गहमागहमी है। ऐसा पाया गया है कि नीम से बनी हुई औषधियाँ असाध्य रोगों में विशेष हितकारी सिद्ध हुई हैं।

थार मरुक्षेत्र में जहाँ कहीं स्थाई बालू-टीले हैं वहाँ हरियाली नजर आएगी। यहाँ की विशिष्ट घास सेनिया इन पर उगी होगी जो घनी तथा फैली हुई होती है। आक और फोग की झाड़ियाँ यहाँ होंगी। आक की झाड़ी फैलती भी खूब है और इसे बने रहने के लिए अल्प मात्रा में पानी चाहिए (चित्र 1.7)। इस पर सफेद-गुलाबी नन्हें सुन्दर फूल आते हैं। देशी आक विषैला होता है, अतः यह मानव का खाद्य पदार्थ नहीं है। आक के दूध का उपयोग दाद खुजली के इलाज में होता है। इसका फल कैरी (कच्चे आम) जैसा होता है जिसके पकने पर रुई सी निकलती है जिसमें आक के बीज होते हैं। पवन के साथ ये बीज उड़कर



चित्र 1.7 – आक की झाड़ी

दूरस्थ स्थानों पर पहुँचते हैं। रोहिड़ा एक ऐसा वृक्ष है जो कि मरुभूमि का सागवान है। इसकी लकड़ी मजबूत और बारीक रेशे की होने के कारण इमारती साज सामान बनाने के उपयोग में ली जाती है। बरसात होने के बाद स्थिर बालू के टीलों पर बेलें उग जाती हैं। इसमें एक बेल तूम्बा फल की होती है। तूम्बा विषैला फल है जिसका आकार मध्य आकार के तरबूजे जितना होता है। बरसात के बाद ही सत्यानाशी की झाड़ियाँ भी थार भूमि में लगभग सर्वत्र उग जाती हैं। इसके फल में नन्हे-नन्हे काले बीज होते हैं। सत्यानाशी की छोटी झाड़ी कांटों भरी होती है। पिछले पृष्ठों में हमने मरु स्थित कुछ स्थानों की चर्चा की थी जहाँ की जमीन खारी है और जिस पर बरसात के बाद सफेद पपड़ी-सी जम जाती है। इस जमीन पर विशेष प्रकार के पौधे उगते हैं जो पानी और नमक को अपने में खींचते हैं। इनसे एक खाद्य पदार्थ जिसे सज्जी कहते हैं, बनाते हैं। पापड़

बनाने में मौलिक रूप से सज्जी ही यहाँ प्रयुक्त होती रही है।

नागफनियों की विविधता के लिए मेरी भूमि प्रसिद्ध है। मरूद्‌भिद् (Xerophyte) प्रकार की वनस्पति के विकास के लिए सूखा गर्म मौसम, बालुई भूमि और निर्जन स्थान सबसे उपयुक्त है। थार मरुभूमि में कैक्टस (Cactus) बहुत सारे प्रकार के नहीं पाये जाते हैं। हम कैक्टसों की विविधता पर विस्तार से चर्चा आगे करेंगे। छोटे-छोटे पत्तों की कंटीली झाडियाँ या शुष्क-सी खोखली डालियों की चौड़ाई में फैली ये वनस्पतियाँ शुष्क क्षेत्र के जीव-जन्तुओं का रोटी-मकान हैं। वे इनसे भोजन पाते हैं, वे इन्हीं में दुबक कर या बिल बनाकर रहते हैं। हमारे मरुस्थल में डण्डा थोर (Euphrobia Nerrifolia) खूब उगता है। एक केंद्र से इसकी बहुत सारी शाखाएँ फूटती हैं जैसे बहुत सारे विशाल त्रिशुल एक साथ खड़े हों जिनका एक मूल जमीन में गड़ा हुआ हो। डालियाँ इसकी तीन-चार सेंटीमीटर मोटी और खोखली होती हैं। इस पर तीखे काँटे होते हैं। डालियों में से और डालियाँ फूटती हैं और थोर चौड़ाई ग्रहण करता जाता है। वायुमण्डल की आर्द्रता पीकर यह फूलता है तथा इस पर हरी मोटी-मोटी-सी पत्तियाँ उग आती हैं। ये स्वाद में खट्टी होती हैं, जिन्हें तोड़ने पर सफेद-सा गाढ़ा रस डाली से रिसता है। मरुभूमि में जहाँ कहीं पहाड़ियाँ हैं वहाँ गुग्गल (Cammiphora Wightii) और ढाक (Butea Monosperma) झाड़ी-पेड़ भी होते हैं। गुग्गल का रस एक उपयोगी रसायन है। इससे धूप लोबान बनता है जिसके जलाने से सुवास निकलती है। यह धुँआ रोग के कीटाणुओं को नष्ट करता है। आयुर्वेदिक उपचार में गुग्गल का बहुत महत्त्व है।

खनिज : मरुस्थल में मशहूर है कि पीढ़ी दर पीढ़ी जो धनाढ्य परिवार है उसका कोई दिखावा नहीं होता, पहली नजर में वह सामान्य से भी कमजोर नजर आयेगा। कदाच् यही बात राजस्थान स्थित थार मरुक्षेत्र पर लागू होती है। लगता है अनुपयोगी बालू बिखरी है, जमीन पर भार स्वरूप जिससे न तो फसल ली जा सकती है न ही भवन निर्माण किया जा सकता है। सच में तो अचल सम्पत्ति यहाँ धरातल के नीचे गड़ी हुई है। भूमि की कीमत प्रतिवर्ग मीटर भारत के अन्य

स्थानों से भले ही कम हो मगर इसकी खदानों के ठेके ऊँचे मूल्यों पर उठते हैं।

बालू और अवसादी चूने के शैल आदि चट्टानों में हाइड्रोकार्बन यौगिकों से बने हुए पदार्थों की उपस्थिति की संभावना बहुत अधिक होती है। यह अनुभव अरब और सहारा मरुस्थल में हुए प्रयोगों से पुष्ट हुआ है। इसी आशा के साथ जैसलमेर में एक स्थान 'तनोट' के पास गहरी खुदाई की गई और हमारे इंजीनियरों को आशा से अधिक सफलता प्राप्त हुई। यही बात अन्य स्थल (घोटारू) और (मनहेरा) में प्रकट हुई। राजस्थान स्थित मरुभूमि में 950 लाख टन, खनिज तेल तथा प्राकृतिक ज्वलनशील गैस हो सकती है। इन्हीं कुँओं से पृथ्वी पर अत्यल्प मात्रा में उपलब्ध हीलियम गैस भी पर्याप्त मात्रा में मिल सकती है। घोटारू में तो ज्वलनशील गैस लगभग 300 मीटर गहराई पर पाई गई है। पाकिस्तान की सीमा से फैले हुए सारे भूभाग में पेट्रोलियम पदार्थ के भरपूर भण्डार अनुमानित हैं। ऐसे ही ऊर्जा दोहन की दृष्टि से अन्य उपयोगी प्राकृतिक खनिज लिग्नाइट क़ोयला के बड़े भारी भण्डार बीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर जिलों में कई स्थानों पर हैं। स्पष्ट है कि ये जमाव प्रागैतिहासिक काल टर्शरी युग में हुए थे। दाब और ताप से ये पत्थर कोयला हो गए। 'पलाना' नामक स्थान से निकलने वाला कोयला वहीं पर लिग्नाइट कोयला आधारित विद्युत उत्पादन संयत्र में काम में लिया जाता है। एक अन्य बहुमूल्य खनिज 'जिप्सम' की खानें भी मरुक्षेत्र में बहुतायत में हैं। वस्तुतः हमारे देश के इस खनिज के एक चौथाई भण्डार राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्र में स्थित हैं। जिप्सम का एक विशेष प्रकार 'सेलोनाइट' बीकानेर जिले में पाया जाता है। तेलों की सफाई में उपयोगी खनिज 'बेन्टोनाइट' भी मरुभूमि से प्राप्त होता है। इसी तरह मुल्तानी मिट्टी जिसका घरेलू से औद्योगिक कार्यों तक में उपयोग है वह भी धोरों की धरती का उत्पाद है।

इमारती पत्थरों के बहुत सारे प्रकार और मनमोहक रंग मरुभूमि की पहाड़ियों और भूमि के भीतर की खदानों में उपलब्ध हैं। 'जोधपुरी पट्टी' और वहाँ के 'खण्डों' से बना भवन जहाँ एक ओर मजबूती में अपना प्रतिद्वंदी नहीं

रखता वहीं उसकी सुन्दरता मनोहारी है। भूगर्भ शास्त्रियों की गणनाओं के अनुसार बाड़मेर तथा जैसलमेर के कुछ स्थानों पर मेसोजोइक युग* की अवसादी चट्टानें हैं। मरुभूमि में ही एक काल में टेथिस सागर** था। इसी कारण से आज 'डीडवाना' और 'जामसर' स्थानों पर 'सोडियम सल्फेट' और नमक की चट्टानें उपस्थित हैं। विश्व प्रसिद्ध मकराना संगमरमर अपनी अद्‌भुत धवलता के कारण ही जाना जाता है। जहाँ एक ओर नागोर जिले में संगमरमर है वहीं जैसलमेर में भी संगमरमर की खानें हैं। मरुस्थल के कुछ स्थान नमक का उत्पादन करते हैं। यहाँ की झीलों में भरा पानी जब सूखता है तो नमक की डलियाँ नीचे जमा हो जाती हैं। 'डीडवाना, पचपदरा एवं सांभर' वे स्थान हैं जो भारत में नमक उत्पादन का चौथाई हिस्सा प्रदान करते हैं। जोधपुर से दक्षिण-पश्चिम में एक स्थान है पचपदरा जिसके नमक का स्वाद समुद्री नमक से मिलता जुलता है। अन्य खनिजों के अतिरिक्त मरुस्थल हमें बहुमूल्य खनिज टंगस्टन भी देता है।

विश्व के कुछ मरुस्थल और उनकी विशेषताएँ

विश्व में जिस तरह दो अलग-अलग स्थानों के पहाड़ या दो अलग खण्डों के समुद्र एक से नहीं हैं वैसे ही कोई दो मरुस्थल एक दूसरे से समानता नहीं रखते हैं। उनकी बनावट अलग थलग होगी तो उनमें पाए जाने वाले खनिज अलग होंगे। मिट्टी का रंग भी एक समान नहीं होगा। वहाँ के निवासी कबीलों या बस्तियों का रहन-सहन सर्वथा भिन्न होगा। पशु-पक्षी तथा वनस्पति के प्रकार भी दो मरुस्थलों की भिन्नता लिए होते हैं। देखो न उसी पृथ्वी का उजाड़ स्थान है मगर कहीं कंगारू है तो कहीं गोड़ावण। यहाँ तक कि मरुभूमि में बनी ढूहों की आकृतियाँ भी मिलती जुलती नहीं होतीं। कहीं कणों से संगीत उभरता है तो कहीं घाटी गूंजती है। इन्हीं विविधताओं के कारण पर्यटक कभी इधर के रेगिस्तान में अवकाश व्यतीत करने आते हैं तो कभी उधर के मरुस्थल में। उसी शोधकर्मी की

---

* प्रागैतिहासिक काल।

** प्रागैतिहासिक काल का समुद्र

मरुस्थलों में समानता की फेहरिश्त की अपेक्षा असमान गुण-धर्म की सूची लम्बी होती है। यही नहीं एक ही मरुस्थल की जमीन की बनावट भी कुछ दूरी पर नितांत भिन्न हो जाती है। अभी-अभी तो मिट्टी इतनी कठोर थी कि उस पर से भारी भरकम ट्रक गुजर जाए। और यह पाँव तले के जमीन दिखती भी उस जैसी है परन्तु अंदर से कितनी अलग कि वाहन के पहिये धँस गए हैं। अभी-अभी तो यह बालू का टीला था और देखते-देखते सपाट स्थान हो चला। यहाँ अब कंकड से बिछे हैं। पवन और धूप, यहाँ की आकृति और चारों ओर के रंग में कैसे फेर बदल कर लें इस पर किसी का अनुमान ठीक नहीं ठहरता।

दुनिया के हर कोने में मेरी छोटी-बड़ी बस्तियाँ तुम्हें नजर आएँगी। इसके दो कारण हैं (i) वहाँ पर प्रकृति के कुछ कार्यकलाप ऐसे हुए कि उस स्थान का भौतिक रंग रूप बदला और बंजर हो उठा, या (ii) मनुष्य ने इतना अधिक प्रकृति का दोहन किया कि परिस्थिति बदल गई, प्रदूषण फैल गया और पर्यावरण ऐसा हो गया कि वहाँ वर्षा का अभाव हुआ और पवन का प्रकोप बढ़ा। हम विश्व के कुछ जाने-माने मरुस्थलों तक ही केंद्रित रहेंगे। इन उजाड़ स्थानों से जहाँ एक ओर हमें पृथ्वी के विकास का ज्ञान प्राप्त होता है वहीं ये हमें सभ्यता और संस्कृति के वे पद प्रदान करते हैं जिससे मनुष्य अपने मूल को पहचान सके।

सहारा : एक समय से यह नाम मेरी बस्ती का पर्यायवाची-सा बना हुआ है। अफ्रीका के उत्तरी क्षेत्र का एक तिहाई हिस्सा सहारा की सीमा के आधीन है। मानचित्र में हम देखें तो सहारा अटलाण्टिक महासागर और लाल सागर के बीच स्थित है। इसकी लम्बाई लगभग 4500 मील है। ऐसा भी नहीं है कि यहाँ बालू की एकसार बस्ती है। इसमें पहाड़ियाँ हैं जिनमें से कुछ तो दस हजार फुट ऊँची हैं। सहारा मरुभूमि में बहुत कम बरसात होती है। मिस्र के मरुस्थलीय इलाकों में से कुछ में तो वृष्टि का औसत आधा इंच ही है। सहारा मरुस्थल में विश्व प्रसिद्ध चाड़ झील है। इस की सीमा में मोरक्को, अल्जीरिया, नाइजेर, लिबिया, मिस्र, टुनिस, चाड़, नाइजीरिया के कुछ राज्य, माली और सूड़ान आते हैं। सहारा में ही कुछ जगह बालू इतनी छितराई है कि उसमें पाँव गहरे धँस जाते हैं। कुफ्रा

और बुटाफाल के बीच 190 मील का रास्ता एकदम सुनसान है। वहाँ कोई निश्चित रास्ता नहीं है। हाँ, वहाँ के मूल निवासी उस दूरी को सात दिन में चल कर पार कर लेते हैं। सहारा खनिज सम्पदा की दृष्टि से धनाढ्य क्षेत्र है। इसकी भूमि ने टनों यूरेनियम, पेट्रोल, लोहा, ताँबा, फास्फेट और बहुमूल्य प्लेटिनम तथा मेंगनिज छुपा रखा है।

लम्बे समय से भूगर्भ शास्त्रियों के लिए सहारा गवेषणा का विषय रहा है। अब से 25 करोड़ वर्ष पूर्व के कार्बोनिफेरस युग में आज के सहारा क्षेत्र को समुद्र ने घेर रखा था। पृथ्वी पर हुई वृहद् उथल-पुथल के बाद वह युग भी वहाँ आया जब कि वहाँ से समुद्र हटा, दलदल बना, फिर बनी सूखी धरती और उसमें थी मीठे पानी की बहुत सारी झीलें। मगर तेरह करोड़ वर्ष बाद ही वहाँ फिर से समुद्र आ धमका। और फिर उसके बाद समुद्र हटा, दलदल बने, भूमि पर पानी की झीलें उभरी। प्रश्न स्वाभाविक है कि यह अनुमान वैज्ञानिक किस प्रकार से लगाते हैं कि अमुक स्थान पर अमुक-अमुक समय में ऐसी पारिस्थितिकी थी? उस स्थान पर आज विद्यमान पहाड़ और गहराई वाली खानों से लाए गए पत्थरों के नमूने इन अनुमान के साक्ष्य प्रदान करते हैं। अवसादी चट्टानों (Sedimentary) में युगानुरूप अलग-अलग मोटाई की खनिजों तथा फॉसिल की भिन्नता ली हुई पट्टियाँ होती हैं। जीव के विकास क्रम में वे जीवाश्म कहाँ आते हैं तथा खनिज का विशेष प्रकार किस काल में हुआ होगा ये अनुमान वैज्ञानिक अपने मानक चार्टों से तुलना कर प्राप्त करते हैं। फिर रेडियोधर्मी पदार्थों की भी उपस्थिति चट्टान के नमूने में होती हैं। आयु मापन की रेडियोएक्टिव विधि से भी चट्टानों की उम्र का निर्धारण किया जाता है। नॉबेल पुरस्कार विजेता अल्वारेज ने अपने भूगर्भशास्त्री पुत्र के साथ चट्टानों की बनावट पर अमेरिका में काम किया था। चट्टानों की विभिन्न परतों का निरीक्षण करने पर ही उन्होंने डायनासौर का पृथ्वी से यकायक लुप्त होने का मान्य कारण ढूंढ निकाला था। उन्होंने चट्टानों के सूक्ष्म निरीक्षण पर पाया था कि केटी-युग में पृथ्वी पर कोई 10 मील का उल्कापिण्ड-सा आकाशीय पदार्थ टकराया था जिससे इतनी धूलि उड़ी कि

सप्ताहों तक पृथ्वी पर अंधेरा छाया रहा। सूर्य की रश्मियों की अनुपस्थिति एवं वायुमण्डल में धूलिकणों की बहुसंख्य मात्रा से प्राणी विशेष कर वृहदाकार प्राणी घुटकर मर गए। बलुआ पत्थरों के अध्ययन से पता लगता है कि 10-20 हजार वर्ष पहले तो सहारा छोटा-सा ही था। सहारा की चट्टानों पर आदिवासियों द्वारा की गई चित्रकारी बताती है कि तब वहाँ दो बड़ी झीलें थीं। नव प्रस्तर मानव (Neolithic Man) काल के चित्रों में जिराफ एवं हाथी नजर आते हैं। मगर बाद के चित्र बताते हैं कि शिकारी पशुओं का स्थान पालतू पशु लेने लगे। चित्र में अब पुरुष चरवाहे थे न कि शिकारी, क्रूर संघर्ष पर आमादा असंस्कृत व्यक्ति। अनुमान है कि अब से 4700 वर्षों पूर्व वहाँ के मौसम में भारी फेर बदल हुए जिनके फलस्वरूप सूखे की स्थितियाँ स्थाई हो गई और चारागाह नष्ट हो गए। यह चित्र बताते हैं कि तब चरवाहों और भेड़-बकरियों का झुण्ड का स्थान घोड़ों पर बैठे लडाकू व्यक्तियों ने ले लिया। और फिर चौथी शताब्दी के चित्रों में हमें ऊँट और कंटीली झाड़ियाँ स्पष्ट नजर आती हैं। इससे स्पष्ट है कि सहारा मरुस्थल भूगर्भीय मापक्रम पर तो हाल ही का है।

सहारा मरुस्थल में दो घुमक्कड़ जातियाँ हैं : तुआरेग (Tuareg) और बरबर (Berber)। ये मूल निवासी मुख्य रूप से चरवाहे थे। बरबर लोग शरीर पर नीला रंग लगाते हैं। पुरुष अपने चेहरे ढके रहते हैं और इनकी स्त्रियाँ नकाब ओढ़ती हैं। तुआरेग एक साहसिक कौम है। वे शिकार के शौकीन हैं। इनका धंधा डाका डालना और पथिकों को लूटना भी रहा है। इनकी अपनी गुप्त भाषा है जो इशारों और ध्वनि पर आधारित है। चिंकारा का शिकार करते हुए वे एक पूरा अभियान चलाते हैं। वे चिंकारों को भगा-भगा कर थकाते हैं और फिर उन्हें जाल में फाँसते हैं। बूढ़े चिंकारों को वे भोजन हेतु मार देते हैं जबकि मादा और बच्चों को छोड़ देते हैं। हिरणों को दुह कर वे दूध भी निकालते हैं।

दक्षिणी अफ्रीका में भी मरुस्थल है : *'कालाहारी, कुरू और नामिब'*। कालाहारी मरुस्थल को चारों ओर से ऊँची पहाड़ियों ने घेर रखा है। इस मरुस्थल की मिट्टी लाल है। यहाँ के आदिवासी 'बिच्छु-मानुष' कहलाते हैं।

इनके तीर विष बुझे होते हैं। ये आदिवासी बुशमैन हैं जिनकी जनसंख्या काफी है। कालाहारी के आदिवासियों की दिनचर्या पत्थर युग (स्टोन एज) के मानवों से मिलती जुलती है। इन आदिवासियों के पुरखों ने ही वहाँ के प्रस्तर चित्र गुफाओं में बनाए थे। इन कलाकृतियों में चन्द्रमा अक्सर चित्रित हैं। चन्द्रमा को ये अपना मार्गदर्शक मानते हैं। कुरू मरुप्रदेश नाम वहाँ उगने वाली एक वनस्पति के नाम से आया है।

अमेरिका के उत्तरी और दक्षिणी दोनों भागों में विशाल मरुप्रदेश हैं। अमेरिका का *'ग्रेट बेसिन डेजर्ट'* उटाह राज्य और निवादा राज्य के समीप है। इसमें समुद्रतल की ऊँचाई से 2000 फुट ऊँचे स्थान भी हैं तो 6000 फुट ऊँचे भी। अमेरिका के केलिफोर्निया राज्य में मरुस्थल है जिसमें भारी ऋतु परिवर्तन होते हैं। वहाँ के मोजाव (Mojave) मरु में कड़ाके की नम सर्दी पड़ती है तो वहाँ सूखी गर्मी भयंकर होती है। एक और मरुस्थल भी वहाँ है जो सोनारां (Sonoran) नाम से पुकारा जाता है। यह दक्षिण में मेक्सिको तक फैला हुआ है। केलिफोर्निया-कोलोराडो मरुस्थल गर्म कोटि का है। इस मरुस्थल में प्रसिद्ध कोलोराडो नदी प्रवाहित है। यह एक गहरी नदी है। इससे लगते उटाह राज्य में प्राकृतिक तौर पर चट्टानें इस तरह कटी हुई हैं कि वे ऊँची मीनारें-सी लगती हैं। गुलाबी मीनारों से भरा हुआ यह शुष्क स्थान दर्शनीय है। इस क्षेत्र में जिप्सम खनिज अधिक मात्रा में उपलब्ध है। इसी क्षेत्र के मूल निवासी *रेड इण्डियन* कहलाते हैं। नावाजो प्रजाति के ये आदिवासी अपनी संस्कृति से प्रेम करते हैं। मिट्टी से की गई इनकी चित्रकारी सुन्दर है। इनमें जहाँ प्रकृति के दृश्य हैं वहीं उनकी मान्यता के अनुरूप देवता के चित्र भी हैं।

यहाँ वन्य जीवों की संख्या भी पर्याप्त मात्रा में है। मरुस्थल में एक स्थान मृत्यु घाटी (Death Valley) है जहाँ पर पृथ्वी का उच्चतम तापमान पाया गया है। मरुस्थल में छः सौ प्रकार के पौधे, एक दर्जन प्रकार की छिपकलियाँ और लगभग छत्तीस प्रकार के चौपाये जानवर हैं। यहाँ की *'किट'* लोमड़ी मशहूर है। यह वहाँ के चूहों का भोजन करती है। यहाँ का कंगारू चूहा केवल रात्रि की

ठण्डक में बिल से बाहर निकलता है इसे पसीना नहीं आता है और मूत्र भी कभी कभार विसर्जित करता है। अतः इसे अपने जीवनयापन के लिए बहुत ही कम मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है। यहाँ की *'गिला' गिलहरी* जहरीली होती है। अमेरिकी मरुस्थल में लगभग दो दर्जन प्रकार के सर्प पाए जाते हैं। *'डायमण्ड बैक'* नाम से जाना जाने वाला सर्प लम्बा और खतरनाक होता है। अमेरिका के मरुस्थलों से भी वन्य जीवों की सम्पदा लुप्त होती जा रही है। इन के बचाव हेतु वहाँ कई कार्यक्रम सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा चलाए जा रहे हैं।

दक्षिणी अमेरिका में पीरू, चीली एवं अर्जेंटाइना में भी मरुस्थल हैं। ये हैं भी बड़े-बड़े। *'अटकामा पेरूवियन'* की गिनती उन मरुभूमियों में है जहाँ प्रतिवर्ष बरसात एकाध इंच ही होती है। अटकामा का ही एक भाग चरम मरुस्थल (Absolute Desert) कहलाता है। यहाँ कुछेक स्थानों पर तो बीस वर्षों बाद ही इंच दो इंच पानी पड़ता है। इसमें एक स्थान प्रशांत महासागर से केवल अस्सी मील दूर है परन्तु वहाँ मेह नहीं बरसता। हाँ बादल वहाँ होते हैं, केवल इतनी नमी होती है कि वहाँ की वन जीवन सम्पदा अपना गुजारा कर सके।

अरब क्षेत्र में बहुत सारे ऐसे प्रदेश हैं जहाँ की गिनती मरुक्षेत्रों में आती है। जोर्डन देश में गोग्होज (Goghoz) एक जाना माना रूक्ष क्षेत्र है। जोर्डन में तापमान 50^0 से 0^0 को छू जाता है। अरब देशों की मिट्‌टी वहाँ के चूना पत्थर और बलूआ पत्थर क्षेत्रों से उत्पन्न हुई जान पड़ती है। अरब देश का नेफुद (Nefud) रेगिस्तान दुनिया का सबसे सुन्दर छटा लिया हुआ मरुस्थल है। लगभग अस्सी हजार वर्ग मील क्षेत्रफल में यह फैला हुआ है। यहाँ की मिट्‌टी का रंग दिन के पहरों में बदलता है। सुबह वह तेज लाल नजर आती है तो दोपहर में चांदी-सी दिप-दिपाती और सांझ ढलते लाल। जार्डन में ही प्रसिद्ध तीर्थ स्थल, मक्का स्थित है। अरेबिया के मरु भाग के नीचे काला सोना के विस्तृत भण्डार हैं। पेट्रोलियम की खोज में पहला कुआँ दक्षिण ईरान में खोजा गया था। ऐसा समझा जाता है कि अकेले अरब क्षेत्रों में विश्व का एक तिहाई प्राकृतिक तेल

भण्डार विद्यमान है।

आस्ट्रेलिया में चार रेगिस्तान हैं : *ग्रेट विक्टोरिया, सिम्पसन* मरुस्थल, *गिब्सन* मरुभूमि और *ग्रेट सेण्डी*। वस्तुतः आस्ट्रेलिया की एक तिहाई भूमि पर मेरा ही फैलाव है। आस्ट्रेलिया देश के मध्य में आइयेरे (Eyere) नामक एक झील है। यह बहुत बड़ी झील सूखी पड़ी है। इस झील के उत्तर की ओर सिम्पसन मरुस्थल है। यहाँ की धरती पर कंकड़ और गोलाकार पत्थर फैले हुए हैं। आस्ट्रेलिया में ही एक अन्य बंजर पड़ी झील अमेदस है। यह सूखी झील बताती है कि कभी यहाँ खूब जल भरा रहता होगा। इस तथ्य का पता वहाँ के भूगर्भ जल स्रोतों से भी चलता है। आस्ट्रेलिया के बहुत सारे क्षेत्रों में खेती और बागवानी नलकूपों द्वारा होती है। आस्ट्रेलिया के मरुस्थलों में चट्टानें भी हैं। वहाँ की एक विशाल चट्टान आयर्स (Ayers) की उम्र बीस लाख वर्ष आँकी गई है।

आस्ट्रेलिया में मूलतः ऊँट नहीं थे वे तो अरब देशों से सौ-सवा सौ वर्षों पहले वहाँ लाए गए थे। यह मूलतः ईमू और कंगारू का देश है। कंगारू एक स्तनपायी पशु है। यद्यपि ये आकार में बड़े हैं मगर जन्म के समय इनके शिशु बहुत छोटे होते हैं। शिशु अवस्था में वे माँ के पेट पर बने थेले में अपना सुरक्षित आश्रय स्थल पाते हैं। ईमू एक चिड़िया है जो बड़ी अजूबी है। अपनी चाल के मस्तानेपन के कारण वह खूब अच्छी लगती है। किसी कार्टून फिल्म और एनिमेशन में ईमू का न होना अस्वाभाविक बात है। मानव वैज्ञानिक एवं समाज शास्त्री की मरुस्थल में रुचि इस कारण से होती है कि वहाँ के मूल निवासी अब भी नव सांस्कृतिक चमक दमक से अछूते हैं। आदिवासी अपनी मौलिकता बनाए रखना पसन्द करते हैं। इस सांस्कृतिक एवं पारम्परिक संरक्षण की भावना से उनके रहन-सहन और तौर तरीके में वे बातें आज भी मौजूद हैं जो वर्षों पहले के मानव में थी। कहते हैं कि अफ्रीकी आदिवासियों ने जब पहली बार बँदूक देखी तो वे बहुत निराश हुए थे। यह उनके शौर्य और पौरुषत्व की भावना को भीषण आघात था। इसी भांति बर्नाड शॉ के बारे में तो सुप्रसिद्ध है कि वे आदिवासियों की नृत्य कला पर अभिभूत थे। उन्होंने कहीं कहा भी है कि यदि

वे उसी उल्लास से नाच पाएँ तो अपने सारे बुद्धि वैभव को उन पर न्यौछावर कर दें। मगर नव सांस्कृतिक आकर्षण ने बहुत ही कम आदिवासी संस्कृतियों को अप्रभावित रखा है। आस्ट्रेलियाई आदिवासियों की जनसंख्या में भी भारी कमी आती जा रही है। यहाँ के आदिवासी अबोरिजिनेस (Aborigines) नाम से पुकारे जाते हैं। ये शिकारी हैं तथा छोटा-मोटा खेती-बाड़ी का काम जानते हैं। इनके कृषि उपकरण सरल हैं। इन्हें अपनी धरती से बड़ा लगाव है। एक बार कुछ पर्यावरण वैज्ञानिक आस्ट्रेलिया की आदिवासी बस्तियों में अध्ययन हेतु पहुँचे थे। भूमि संरक्षण की उन मूलवासियों की भावना से वे चकित थे। उनके मुखिया ने उन्हें बताया कि जमीन से उतना ही लेना चाहिए कि जितना हम उसे वापिस लौटा सकें। पर्यावरण के साथ खिलवाड़ कर रही आधुनिक सभ्यता के लिए उससे उत्तम भला क्या नीति वाक्य होगा। आस्ट्रेलिया के आदिवासी कला प्रेमी भी हैं। उपचार के इनके पारम्परिक तरीके हैं। ये जड़ी बूटियाँ और जादू-टोने रोगी को ठीक करने हेतु प्रयोग में लेते हैं। शिकार हेतु आस्ट्रेलिया निवासी बूमरेंग को प्रयुक्त करते हैं। इनके पास दो प्रकार के ऐसे फैंकने वाले चन्द्राकार हथियार हैं : एक जो वार कर वहीं ठहर जाते हैं और दूसरी प्रकार के जो वार कर मारने वाले के पास लौट आते हैं। आस्ट्रेलिया के आदिवासियों का विश्वास है कि कोई पराशक्ति भी अस्तित्व में है। ये देवी-देवता में विश्वास करते हैं। आस्ट्रेलिया आदिवासियों की बस्तियों के पास की पहाड़ियों में बने हुए भित्तिचित्र कला के उत्कृष्ट नमूने माने जा सकते हैं। उनमें देवता भी हैं और हैं उनका स्वप्न-लोक, शिकार और साहस तथा कुछ ज्यामितीय आकृतियाँ।

एशिया के मरुस्थलों में हम नितांत भिन्न पारिस्थितिकी पाते हैं। वस्तुतः यदि यूरोप की ओर से कोई एशिया में प्रवेश करे तो उसे अनुभव होगा कि वायुमण्डल में आर्द्रता नियमित तौर पर घटती जा रही है। इसके अतिरिक्त औसत वार्षिक वृष्टि के मान में भी कमी होती जाती है। एशिया का एक जाना पहचाना मरुस्थल है *'गोबी का मरुस्थल'*। इस मरुभूमि का एशिया में विस्तार 1000 मील की लम्बाई तक है। इसका फैलाव पश्चिमी चीन से मंगोलिया की

ओर है। गोबी का मरुस्थल एक ऊँची घाटी जैसा है। इसकी ऊँचाई भी सर्वत्र एकसार नहीं है। यह कहीं 2500 फुट तो कहीं 3500 फुट हो जाती है। यह ठण्डा प्रदेश शुष्क कोटि का है। इस मरुस्थल में जहाँ हमें बहुत सारे ढूह कतार से नजर आते हैं वहीं उनकी नीरसता तोड़ती चट्टानें भी कहीं-कहीं विद्यमान हैं। इस मरुभूमि में नमक की झीलें हैं जिनसे नमक का उत्पादन होता है।

मंगोलिया क्षेत्र में याक पाए जाते हैं। ये बैल जैसे होते हैं। इस पर माल ढोया जाता है। इसी क्षेत्र में जंगली गधे भी हैं मगर वे पालतू पशु हैं। 'कुलान' नाम से जाने जाने वाले ये पशु घरेलू कामकाज हेतु प्रयोग में आते हैं। इस क्षेत्र में पाई जाने वाली भेड़ें विशिष्ट हैं। वे अच्छी खासी लम्बी-चौड़ी होती हैं। ये भेड़ें अरगाली (Argali) नाम से जानी जाती हैं। इन भारी भरकम भेडों का वजन साढ़े तीन सौ पाउण्ड तक हो सकता है। भेडों के सींग मुड़े हुए होते हैं और वे दो-तीन फुट तक की वकृता लिए होते हैं। कुछ भेड़ें तो मनुष्य की ऊँचाई तक की होती है और चौड़ाई छः सात फुट की होती है। यहाँ बारहसिंगा भी बहुत संख्या में हैं। यहाँ की एक प्रमुख किस्म का नाम 'साइगा' है। ये दिखने में भद्दे हैं। उक्रेन, कजाकिस्तान और मंगोलिया में साइगा हरिण खूब हैं। तुम विश्वास न करोगे कि ऊँट के दो कूबड़ होते हैं। मगर यह सत्य है। दो कूबड़ वाले ऊँट यहाँ बड़े उपयोगी पशु हैं। 'बेक्ट्रियान' (Bactrian) नाम से विख्यात ये पशु शक्तिशाली भी हैं। गोबी मरुस्थल की ठण्ड और वहाँ की भयंकर बर्फीली आँधियों को झेलने की इनमें अदम्य क्षमता है।

अफगानिस्तान का मरुस्थल दुनिया का खड़ा मरुस्थल कहा जाता है। सारा मरुस्थलीय खण्ड उजाड़ और सुनसान है। अफगानिस्तान है भी पहाड़ी क्षेत्र। इसमें पहाड़ियों की ऊँचाई 8000 से 20000 फुट तक है। पहाड़ियाँ निर्जीव-सी लगती हैं क्योंकि वहाँ पेड़ पौधे नहीं हैं। वहाँ रहने वालों को अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ये मजबूत लड़ाकू कौम माने जाते हैं।

भारतीय क्षेत्र की मरुभूमि भिन्न प्रकार की है। इसका कुछ क्षेत्र पाकिस्तान के सिंध क्षेत्र में है जबकि कुछ पश्चिमी राजस्थान और गुजरात के क्षेत्र में है।

भूगर्भ शास्त्रियों के अनुसार यहाँ अरावली युग की चट्टानों से लेकर हाल ही की उथल-पुथल से उठी चट्टानें भी मौजूद हैं। यहाँ की बालू मेसोजोइक से सेनोजोइक (Mesozoic to Cenozoic)* काल की है। यह उड़कर तथा बहकर आई हुई है। यहाँ की धरती के गर्भ में एस्बेस्टोस, बेराइट, केलसाइट, चाइना-क्ले, जिप्सम, फूलर-अर्थ, लिग्नाइट, सिलिका सेण्ड, चूना पत्थर, खडिया पत्थर, बलुआ पत्थर आदि हैं। कम खुदाई पर यहाँ निकला पानी खारा होता है। पानी में फलोराइड की मात्रा भी अधिक है। एक समय में इस पूरे क्षेत्र में *सिंधु घाटी* सभ्यता अस्तित्व में थी। यहीं वैदिक काल की नदी सरस्वती प्रवाहमान थी।

सरस्वती थी भी? भारत में प्रमुख तीन नदियों के नाम लिये जाते हैं : गंगा, यमुना, सरस्वती। गंगा और यमुना तो हैं और इलाहाबाद में "संगम" स्थल पर कहा जाता है कि यहाँ सरस्वती की धारा का अंतर्प्रवाह है। इस पर वैज्ञानिक मन को विश्वास नहीं होता है। हाल की वैज्ञानिक खोजों से पता लगा है कि वैदिक सरस्वती का अस्तित्व था एवं उसका प्रवाह लुप्त हुआ है। प्रादेशिक सुदूर संवेदन केन्द्र (State Remote Sensing Centre), जोधपुर, केन्द्रीय रुक्ष अनुसंधान केन्द्र (Central Arid Zone Research Centre) काजरी जोधपुर, भूजल विभाग, अंतरिक्ष उपयोग केन्द्र अहमदाबाद, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र मुम्बई और जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय जोधपुर के संयुक्त तत्वावधान में किए गए समन्वित शोधकार्य ने उपग्रह चित्रों तथा अन्य माध्यमों से वैदिक सरस्वती के प्रवाह के मार्गों का पता लगाया है। वर्तमान में घग्घर नदी का सूखा पात्र कहलाने वाला खण्ड सरस्वती प्रवाह का स्थान रहा है। वैज्ञानिकों के अनुसार लुप्त होने से पूर्व सरस्वती नदी ने पाँच मार्ग बदले और अंततः अनूपगढ़ से आगे दो धाराओं में बँटकर पाकिस्तान के मरोठ व बेरीवाल नामक स्थानों पर लुप्त हो गई। विशेषज्ञों के अनुसार सरस्वती नदी से पहले सतलुज और यमुना का संगम पंजाब के सतराना नामक स्थान पर होता था। कालांतर में भारतीय उपमहाद्वीप

* भूगर्भ शास्त्रीय काल (पृष्ठ 94)

और यूरोपीय महाद्वीप के भूगर्भीय विवर्तनिक (Tectonic) परिवर्तनों के कारण दिल्ली-सरगोधा कटक के उठान से यमुना पूर्व की तरफ और सतलुज पश्चिम की तरफ बहने लगी। इस तरह सरस्वती की दो बड़ी सहायक नदियाँ उससे अलग हो गईं। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि घग्घर का मौजूदा सूखातल सरस्वती नदी का प्रवाह मार्ग था और इसी मार्ग से यमुना व सतलुज के दिशा परिवर्तन के कारण वह लुप्त हो गई। सतलुज और यमुना के सरस्वती का साथ छोड़ने से पहले उत्तरी-पश्चिमी राजस्थान के बहुत बड़े भूभाग से उसका प्रवाह था। वैज्ञानिक मानते हैं कि जैसलमेर के लाठी-चांघन इलाके का मीठा जल अथाह भूगर्भीय भण्डार एक समय में वहाँ सरस्वती के प्रवाह के कारण से है। यहीं बड़े जल प्रवाह में बहकर आए गोल पत्थर अब भी पाए जाते हैं और बालू से ढका किसी नदी का थाला वहाँ अब भी नजर आता है। जैसलमेर में ही कुछ स्थानों पर खेजड़ी वृक्षों से घिरा विशाल क्षेत्र इंगित करता है कि यहाँ नीचे भूगर्भीय पानी होना चाहिए।

2. मेरे गुण-अवगुण

रेगिस्तान की लहर को पानी समझकर ही यदि वहाँ जाकर व्यक्ति यह जल नहीं है समझे तो वह मूढ़ है बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन (175 ई.)

इस धरती पर कहाँ-कहाँ मेरे मुख्य निवास स्थान हैं, वहाँ का जन-जीवन कैसा है, वानस्पतिक सम्पदा एवं पशु-पक्षी वैभव कैसा है आदि जानकारियाँ तुमने पिछले अध्याय में पाई हैं। वस्तुतः वैज्ञानिक विधि में सबसे पहले उस वस्तु का निरीक्षण करना होता है। "कहाँ कहाँ हैं" का ज्ञान हो जाने पर हमारी अगली जिज्ञासा होती है "किस तरह हैं"। "कैसे हुआ होगा" का समाधान प्रश्नाधीन वस्तु के गुण-दोष जानने से आरम्भ होता है। क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित तौर पर बढ़ने का मार्ग अपना कर ही विज्ञान में लक्ष्य तक पहुँचा जाता है। इस मूल मंत्र का स्मरण करते हुए मेरे रहस्यों को जानने की दिशा में आगे बढ़ने की पहली सीढ़ी है कि तुम जानो मिट्टी या मृदा कैसे बनी।

हमारी पृथ्वी पर तीन प्रकार की चट्टानें हैं : आग्नेय (Igneous), अवसादी (Sedimentary), और कायान्तरित (Metamorphic)। द्रवावस्था से सीधे ही जो चट्टानें पृथ्वी के आरंभिक काल या बाद में बनी वे आग्नेय चट्टानें हैं। जैसे-जैसे गर्म द्रव ठण्डा पड़ता जाता है तब कई खनिज से मिलजुल कर ठोस अवस्था में मणिभ या रवाहीन ठोस बनता है। स्थूल कणों की संरचना लिए हुए एक आग्नेय चट्टान ग्रेनाइट (Granite) है। इस

चट्टान के पहाड़ प्रायः हर कहीं पाये जाते हैं। इस चट्टान में मुख्य खनिज क्वार्टज (Quartz), फेल्डस्पार (Feldspar) और भोड़ल (Mica) हैं। गर्मी-सर्दी-बरसात-पवन और रसायन द्वारा की गई क्रियाओं से ये चट्टानें कालांतर में छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित होती जाती हैं। ये छोटे-छोटे चट्टान के कण तथा अन्य खनिज वायु और पानी में बहकर धरातल पर एकत्रित होते हैं। कुछ ऐसे खनिज भी होते हैं जो इन बारीक अलग टुकड़ों को जोड़ते हैं या चिपकाते हैं। यह जमाव खुले में भी हो सकता है और पानी के नीचे भी। इस प्रक्रिया में चट्टानें बन जाती हैं। इन्हें अवसादी चट्टान कहते हैं। लम्बे समय तक गर्मी और दाब के कारण आग्नेय एवं अवसादी चट्टानों के रूप में परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार बनी चट्टान कायान्तरित चट्टान हैं। कायान्तरण में बहुत सारे नए खनिजों का सृजन हो जाता है। उदाहरण के तौर पर चूना पत्थर प्रकार की अवसादी चट्टान कालान्तर में कायान्तरित हो संगमरमर चट्टान बन जाती हैं।

झरनों द्वारा चट्टान का घिसना, पवन के शक्तिशाली थपेड़े आदि यांत्रिक क्रियाएँ हैं; गर्मी पाकर चट्टान का फैलना तथा ठण्डा होने पर उसका सिकुड़ना आदि ऊष्मीय क्रियाएँ हैं; सामान्य एवं रसायन युक्त जल द्वारा चट्टान का कुछ अंश घोलना रासायनिक अभिक्रियाएँ हैं। ये क्रियाएँ मिल-जुलकर चट्टानों को तोड़ती बिखेरती हैं। टूट कर ये छोटे-बड़े कण पत्थर के गुटकों का निर्माण करते हैं। धरती पर चट्टान के ये छोटे-छोटे विभाजित बिना चिपके अलग-अलग जमा हुआ समूह तथा कुछ जैव पदार्थ का मिश्रण मृदा या मिट्टी कहलाते हैं। रेत या बालू में प्रायः फेल्डस्पार और क्वार्टज के कण तथा कम मात्रा के कुछ अन्य खनिज भी होते हैं।

मृदा के प्रकार – यह तो तुम जानते ही हो कि अनुमत रासायनिक बंधनों द्वारा तत्व खनिज बनाते हैं। सीमित तत्व विविधता लिए इतने सारे खनिजों को बना चुके हैं कि प्रकृति में व्याप्त इस अनेकता पर दाँतों तले अंगुली दबाना पड़ता है। फिर भी हमारी पृथ्वी के ऊपरी धरातल भूपटल

(Crust) की चट्टानों को बनाने में मुख्य भूमिका कुछ तत्वों ने ही निभाई है। उनमें से पन्द्रह प्रमुख तत्व नीचे की सारणी में दिए गए हैं।

भूपटल के निर्माण में लगे मुख्य तत्व

तत्व		*भूपटल प्रतिशत*
आक्सीजन	O	46.5
सीलिकोन	Si	27.6
एल्यूमिनियम	Al	8.1
आईरन	Fe	5.1
केल्सियम	Ca	3.6
सोडियम	Na	2.7
पोटेशियम	K	2.6
मेगनीशियम	Mg	2.1
टीटेनियम	Ti	0.6
हाईड्रोजन	H	0.14
फोसफोरस	P	0.12
कार्बन	C	0.09
सल्फर	S	0.06
क्लोरीन	Cl	0.05
बेरियम	Ba	0.04

पृथ्वी पर जैव पदार्थ भी हैं एवं उनका चूरा भूपटल पर बिखरा रहता है। एक मृदा जिसमें 20 प्रतिशत या उससे कम जैव पदार्थ हैं वह खनिज मृदा (Mineral Soil) कहलाती है जबकि 20 प्रतिशत से अधिक जैव पदार्थ यदि मिले हों, वह मृदा जैव मृदा (Organic Soil) कोटि की कही जाती है। तुम्हें अनुमान लग ही गया होगा कि मैं, बालू खनिज मृदा में आती हूँ।

मृदा की कोटियां या मिट्टी की यांत्रिक संरचना से तात्पर्य उसके कणों के आकार से होता है। हाँ, यह मात्रात्मक रूप से ही है वरना गुणात्मक रूप से वर्गीकरण करने हेतु तो वर्गीकरण जो कि अंतर्राष्ट्रीय वर्गीकरण है, को श्री एट्टरबर्ग ने प्रस्तावित किया था। वह निम्न है :

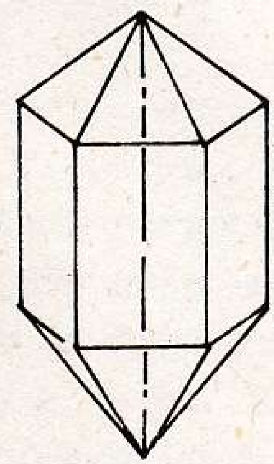
मृदा अंश (अंतर्राष्ट्रीय पद्धति)

मृदा अंश	*व्यास (मिलीमीटर)*
मोटी रेत (Coarse Sand)	2.0 - 0.2
झीनी रेत (Fine Sand)	0.2 - 0.02
गाद या सिल्ट (Silt)	0.02 - 0.002
मृत्तिका या क्ले (Clay)	< 0.002

जैसा कि अक्सर होता है विवरणात्मक बातें और वर्गीकरण ऊबाऊ लगते हैं मगर विज्ञान के अध्ययन में ये अत्यंत आवश्यक हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि जहाँ दर्शन और आइडिया (या प्रत्यय) विज्ञान की आत्मा है वहीं आँकड़े, वर्गीकरण, विवरण आदि उसकी अस्थियाँ हैं तथा व्याख्या, निष्कर्ष और भविष्य कथन क्षमता रूपी चर्म और मज्जा पाकर विज्ञान मूर्त हो उठता है। परिभाषित मृदा अंशों में गुटिका या पेबल (Pebble) हमने नहीं जोड़े हैं जो कि कंकड़ हैं और चट्टान के अपेक्षाकृत बड़े-बड़े टुकड़े हैं। रेत जिसमें कि 'बालू' एक प्रकार की रेत है वैसे ही 'बजरी' भी एक अन्य प्रकार की रेत है। 'सिल्ट' भी है तो क्वार्टज आदि खनिजों से बनी हुई अगर उसका रासायनिक क्षरण नहीं होता है। 'क्ले' जबकि पत्तर (Flake) सी फैले हुए भोड़ल, केओलिन आदि खनिजों से बनी हुई होती हैं जोकि हवा में तैर भी सकती है।

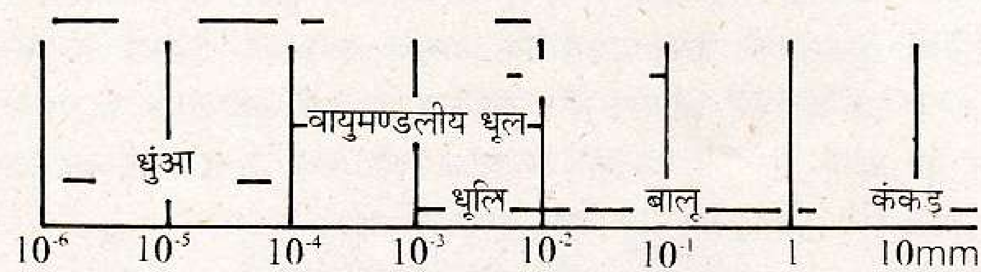
तुम मेरे घटक खनिजों के बारे में अवश्य जानना चाहोगे। यह है भी आवश्यक क्योंकि इनके गुण और विशेषताएँ वे बातें हैं जो हमें इंगित भी

करेंगी कि प्राकृतिक प्रक्रियाओं में बालू का व्यवहार कैसा होना चाहिए। अथवा हम भविष्य कथन भी कर पायेंगे कि अमुक तरह के अवसर हों तो बालू किस तरह का व्यवहार करेगी। तीन खनिज जो कि अधिकांश मृदा को बनाते हैं उन पर चर्चा अब हम करेंगे। क्वार्टज का अन्य नाम सिलिका (Silica) है। इसका सूत्र SiO_2 है। यह एक पारदर्शी खनिज है। द्रव मेग्मा (Magma) के धीरे-धीरे ठण्डा होने पर यह मणिभीय आकृति लिए होता है जिसे चित्र 2.1 में दिखाया गया है। ज्यामितीय तौर पर यह षटफलकीय (Hexagonal) होता है। यह एक कठोर खनिज है। चट्टान कठोरता मापक्रम (Rock Hardness Scale) में यह 7 मान पर है। इस मापक्रम में 10 मान पर कठोरतम हीरा होता है। एक के मान पर खनिज केलसाइट (Calcite) होता है। क्वार्ट्ज तो यांत्रिक क्रियाओं पर ही टूटता है। फेल्डस्पार (Feldspar) दूसरा खनिज है जो चट्टानों में बहुतायत में होता है, अतः वह रेत में भी अधिकता में होता है। इसमें एल्यूमिनियम के सिलिकेट हैं जिनके साथ सोडियम, पोटेशियम, केल्सियम आदि मिले हो सकते हैं। गुलाबी रंग का खनिज फेल्डस्पार ग्रेनाइट चट्टानों में होता है। चट्टान कठोरता मापक्रम में इसकी संख्या 6 है। स्पष्ट है कि यह भी आसानी से टूटने वाला नहीं है। भोड़ल या माइका (Mica) की तो पतली-पतली परतें होती हैं। यह प्रकाश को परावर्तित करता है इसलिए धूप में रखे दर्पण की भांति यह चौंध या चमक पैदा करता है। इसका एक प्रकार मस्कोवाइट भी अक्सर चट्टानों में होता है। रेत में भी यह होता है और बारीक क्ले में भी इसकी खासी मात्रा होती है।



क्वार्टज का मणिभ
चित्र 2.1

हम बालू को अधिक महत्त्व देना चाहते हैं इसलिए हम रेत के उस प्रकार पर लौट आते हैं जोकि मरुस्थल में विद्यमान हैं। इस संबंध में हम



पवन से विचलित होने वाले कण

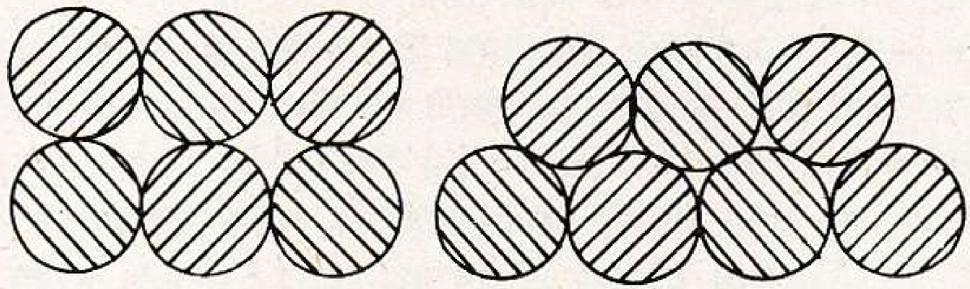
चित्र 2.2

नीचे दिए गए चित्र 2.2 पर ध्यान देंगे। जिसमें उन कणों का उल्लेख है जोकि सामान्य गति से बह रही पवन से विचलित होते हैं। हम एक ओर कंकड़ पाते हैं जो कि कुछेक मिलीमीटर आकार के हो सकते हैं जबकि सबसे छोटे हैं धुआँ-धुंध की कणियाँ (Granule)। वायुमण्डलीय धूलि (Atmospheric dust) और धूल (dust) तथा रेत या बालू इनके मध्य स्थित हैं। इस चित्र से हमें स्पष्ट होता है कि आकार की दृष्टि से बालू की परास छोटी है, अर्थात् वायु से प्रभावित होने वालों में अन्य वस्तुएँ कहीं अधिक हैं। वस्तुतः छोटे-छोटे कण जैसे धुआँ की कणियाँ तो नीचे धरातल पर गिरती ही नहीं हैं। वे कण वायु के अणुओं से टकराते रहते हैं और गुरुत्वाकर्षण से अप्रभावित अधर झूल में लटके रहते हैं। दूसरी ओर है बालू। उसका सबसे बड़ा सीमांत आकार वह है जबकि धरातल पर पड़ा हुआ वह कण पवन के सीधे दाब के कारण या दूसरे कण के टकराने से उठ न पाये। बालू के कण वायु बहाव में एक मीटर से ऊपर उठ नहीं पाते हैं, जबकि धूलि के कण कई मीटर उठकर गिरते हैं।

भौतिक एवं रासायनिक गुण – कोई पदार्थ कहाँ प्रयुक्त किया जा सकता है अथवा कहें कि कहाँ वह उपयोगी रहेगा, कहाँ अनुपयोगी। इसे निर्धारित करने के लिए आवश्यक है कि उसके लक्षण एवं गुण पहचान लिए जायें। विज्ञान की दृष्टि से जब भी हम गुण या विशेषता की बात करते

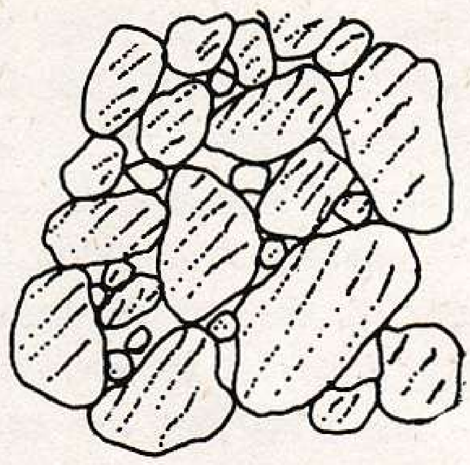
हैं तो साधारण स्थूल संरचना से लेकर स्पेक्ट्रमिकी या वर्णक्रम लक्षणों तक जिज्ञासारत रहते हैं। विवरण जितने व्यापक उपलब्ध होते हैं सही चुनाव करना उतना ही सरल और विश्वसनीय हो जाता है। बालू के सन्दर्भ में भी हम कुछ विशिष्ट गुणों का उल्लेख करना चाहेंगे जिससे हम उसके समूह व्यवहार को समझ सकें तथा अनुमान ले सकें कि वह कहाँ उपयोगी रहेगी।

संरचना – बनावट के अध्ययन से हमें यह पता लगता है कि एक दूसरे के साथ कणों की व्यवस्था किस प्रकार की होगी। 0.02 मिलीमीटर जैसे बड़े आकार के कण जब पानी के धरातल पर एकत्रित होते हैं तो वे कोई परस्पर क्रिया नहीं करते हैं। उनका भार उन्हें तले में पहुँचाता है जहाँ लुढ़ककर वे अपना स्थाई स्थान बनाते हैं। एक ही तरह के कण हों तो उनसे बनी संरचना नैसर्गिक तौर पर चित्र 2.3 में बताये अनुसार होगी।



गोलों से बनी : (क) ढीली-ढाली रचना (ख) घनी रचना
चित्र 2.3

इस तरह एकत्रित हुए वे एक *ढीली-ढाली* रचना को एक सीमा पर अंगीकार कर सकते हैं तो वे *सघन रचना* भी बना सकते हैं दूसरे सीमांत पर। उदाहरण के तौर पर हम चित्र में दी गोलों की व्यवस्था पर नजर डालते हैं। जब कि एक गोले का व्यास दूसरे की सीध में हो और ऐसा क्रम बनाएं तो वह घनाकार संरचना होगी। जबकि दो गोलों के सटने के बाद तीसरा गोला उनपर ऐसे आकर जमें कि उसकी व्यास रेखा उनके सटने के बिन्दु



प्राकृतिक कणों से बनी संरचना

चित्र 2.4

से गुजरे तो इस क्रम में बनी रचना चतुष्फलकीय होगी। यह संरचना सघन कोटि की है। जबकि संरचना घनाकार होती है वह ढीली कोटि की है। प्राकृतिक संरचना इन आदर्श बनावटों के मध्य रहती है। इसे चित्र 2.4 में दर्शाया गया है। बालू में आरंभिक जमाव तो ढीली संरचना से होता है मगर हलचलों के कारण वह धीरे-धीरे सघनतर होती जाती है।

आकार : एक ढेरी में बालू के आकार का निर्धारण यांत्रिक विश्लेषण विधि (Mechanical Analysis) द्वारा किया जाता है। एक पर एक अलग-अलग छिद्र व्यास की छलनियाँ क्रम से रखकर सबसे ऊपर बालू भरी जाती है। इसे खूब हिलाने पर सबसे ऊपर मोटी और सबसे नीचे बारीक धूल जमा हो जाती है। इस तरह औसत आकार की मात्राएं अलग-अलग की जाती हैं। बालू के नमूनों में एक विशेष मान के व्यास कणों की ज़्यादा संख्या होती है। वायु से प्रभावित मृदा (Aeolian) के कणों का आकार 0.3 मिलीमीटर से 0.15 मिलीमीटर के मध्य होता है। बालू न चिपकने वाले ठोस कणों की होती हैं। तुम्हें यह स्मरण होगा कि हमने पहले कहा था बालू पूर्ण गोलाकार नहीं होती। थार मरु की बालू के लिए हमने कहा था उसकी औसत गोलाई 0.75 मिलीमीटर है तथा इसके कण का मध्य आकार 0.135 मिलीमीटर।

सरंध्रता (Porosity): बालू की ढेरी को देखें तो हम पाते हैं कि उसमें ठोस कण हैं और उनके बीच के छिद्रों में वायु। घिरे हुए ठोस तथा खाली स्थान से निर्धारित एक गुणांक परिभाषित है जो कि द्रव प्रवाह एवं ढेरी की भार सहन क्षमता आदि मानों के निर्धारण में उपयोगी होता है। मिट्टी

में *सरंध्रों* का आयतन और उस सारी मिट्टी का आयतन का अनुपात उस मिट्टी का सरंध्रता गुणांक कहलाता है। सामान्यतया बालू की सरंध्रता 30 से 45 के मध्य होती है। सामान्य गणनाओं, में बालू की सरंध्रता 40 मान ली जाती है।

पारगम्यता (Permeability): पारगम्यता वह गुणांक है जिससे बालू के उस गुण का अनुमान किया जाता है कि उसमें से पानी किस सुगमता से गुजरेगा। परिभाषा के तौर पर कहा जाता है कि द्रवचालित प्रवणता (Hydraulic Gradient) यदि एक हो तब उसमें से जल प्रवाह की चाल उसकी पारगम्यता है। एक माध्य बालू में वह मान 0.0036 सेंटीमीटर प्रति सेकण्ड होता है।

यांत्रिक गुणों के अतिरिक्त बालू के ऊष्मीय गुणों का ज्ञान भी उपयोगी है। इन गुणों से जहाँ हमें एक ओर बालू की ऊष्मारोधक शक्ति का अनुमान लगता है वहीं यह भी पता लगता है कि कब मरुस्थल गर्म होगा कब ठण्डा। मिट्टी में पड़े बीज का अंकुरित होना तथा पौध का बढ़ना जड़ों की मिट्टी के ऊष्मीय एवं जलीय गुणों से संचालित होता है। बिजली की केबल (तार) जमीन में बिछाई जाती है। ऊर्जा हानि के कारण वह गर्म होती है। यह गर्मी उसके चारों ओर की धरती में किस तरह वितरित होगी इस ज्ञान के लिए वहाँ की मिट्टी के उष्मीय गुण ज्ञात होने आवश्यक हैं। भवन निर्माण में तथा उसकी नींव में मिट्टी बिछी होती है। भवन में ताप नियंत्रण हेतु भी विविध ऊष्मा गुणांकों की आवश्यकता होती है। बालू की अनेकों उपयोगिताओं में से एक महत्त्वपूर्ण उसका सौर ऊर्जा के संग्रहण में उपयोग है। ऊष्मा की कुचालक होने से बालू वहाँ भी उपयोगी ठहरती है जहाँ संग्रह की गई ऊष्मा को अनुपयोगी ह्रास से बचाना होता है।

मिट्टी में ऊष्मा प्रवाह की प्रक्रिया मुख्यकर ऊष्मा संचालन (Heat Conduction) द्वारा होती है। इस प्रक्रिया को समझने हेतु गुणांक ऊष्मा चालकता तथा मृदा की विशिष्ट ऊष्मा का ज्ञान आवश्यक हो जाता है। पहला

गुण, ऊष्मा चालकता हमें ज्ञान देता है कि अमुक मात्रा की ऊष्मा प्रवाह पर वहाँ अलग-अलग स्थानों पर तापमान के मान क्या होंगे। जैसे कि धरती के धरातल के नीचे तापमान के मान गहराई के साथ कितने हैं अथवा ऊष्मा तरंग किस गहराई तक उस धरती में पहुँचेगी। विशिष्ट ऊष्मा गुणांक उसके ऊर्जा संग्रहण क्षमता को व्याख्यायित करता है। ये दोनों गुणांक तथा मिट्टी के घनत्व मान आदि से हमें यह ज्ञान होता है कि सूर्य से आ रहे विकिरण की ऊर्जा का वितरण धरती में किस तरह होता है। अवश्य ही पृथ्वी पर आये हुए विकिरण का कुछ भाग परावर्तित होकर आकाश में चला जाता है, कुछ वायु को गर्म करता है, कुछ वाष्पन में काम आ जाता है और इसके बाद बचा हुआ धरती में प्रवेश पाता है। धीमी गति से मगर निरंतर विकिरण से प्राप्त ऊष्मा गहरे-गहरे उतरती रहती हैं। इस ऊष्मा का क्षीण होना मिट्टी के भौतिक तथा रासायनिक गुणों से निर्धारित होता है।

कुछ विशिष्ट प्रयोजनों में बालू या मृदा के वैद्युत गुणांक उपयोगी हैं। भूभौतिकीय सर्वेक्षण एवं अनुसंधानों में उनका विशेष महत्त्व है। धरती के नीचे के खनिजों का पता लगाने में तथा दूर संचार संबंधी कार्यों में उस स्थान विशेष के ये गुण हमें ज्ञात होने चाहिए। अभियांत्रिकी और खेती-बाड़ी में उपयोगिता की दृष्टि से हमने ऊपर कुछ वैज्ञानिक गुणांकों की चर्चा की। मगर बालू के टीले कैसे बनते हैं तथा धरातल पर उर्मियाँ कैसी होती हैं आदि समझने हेतु तो हमें कुछ भिन्न जानकारियाँ चाहिए। अब हम उन पर अपनी चर्चा केंद्रित करते हैं। बहुत पहले, प्रयोगशालाओं में छोटे कंकड़ों का कृत्रिम धरातल बिछाकर उस पर अनेक चालों से वायु को प्रवाहित किया गया था। तब पाया गया कि ऊर्जा पाकर गतिमान हुए इन कंकड़ों का व्यवहार इस्पात के छर्रों जैसा है। वे इधर-उधर होते हैं परन्तु टकराने पर टूटते नहीं। इस तरह के अनेकों प्रयोगों से यही सिद्ध होता है कि बालू की उत्पत्ति पवन की क्रियाओं से संभव नहीं है। बालू को अपनी आकृति और आकार जल की यांत्रिक क्रियाओं से मिला है। समुद्र या नदी किनारे

पाई जाने वाली बजरी के कण नुकीली आकृति लिए होते हैं। वे वहाँ से हवा द्वारा हटाये जाने के क्रम में गोलाकार होते गए। एक आकृति और आकार पाने के बाद तो वे पवन द्वारा केवल स्थान बदलते रहते हैं। बालू की वही आकृति और आकार की परास फिर वर्षों तक स्थिर रहती है।

टीले और उर्मियाँ : मरुस्थल में जब कोई पर्यटक जाता है तो देखते-देखते मौसम में आये बदलाव पर वह चकित रह जाता है। अभी-अभी तो सब कुछ शांत था, हवा मंद बह रही थी हालांकि वह गर्म थी। यकायक यह कैसे हुआ कि पवन का मन मचल उठा और वह तेज चाल से उधम मचाने लगी। इस कारण पृथ्वी धरातल के ऊपर के हिस्से में छोटे-छोटे कणों की संख्या में वृद्धि हो चली। इससे चहुं ओर वातावरण की स्वच्छता मिट गई और दूर का दिखना धुंधला हो चला। वस्तुतः उठी हुई धूलि आकाश में ऊँचाई तक फैल कर पारदर्शिता समाप्त कर देती है। सूर्य की तेजी मिट जाती है और उस धुंधले में लगता है कि प्रकृति को हंपनी चढ़ गई है। कोई कह बैठता है – बालू का अंधड़ आया है। वस्तुतः यह गलत बात है जैसे कि 'सूर्यास्त हुआ' है। अस्त तो पृथ्वी होती है अपनी गति के कारण। चढ़ी बालू नहीं धूलि है। इसका सीमांत वेग (Terminal Velocity)* कम होता है। इसी कारण मिट्टी का बारीक भाग आकाश में उठने के बाद लम्बे समय तक टंगा रहता है। तब प्रकाश की मात्रा में गिरावट आ जाती है जो लम्बे समय तक ज़ारी रहती है। वस्तुतः अगर बालू के कटाव-सी स्थिति हो तब तो आसमान बहुत जल्दी स्वच्छ हो जाता है। मगर धरातल के समीप गतिकी प्रक्रिया जारी रहती है। बालू का ज्वार बढ़ता जाता है। गति करते बालू के समूह का घना झुण्ड-सा वहाँ ऊँचाई में डेढ़ दो मीटर हो सकता है। पाँव के आस-पास बालू की चाल तेज होती है ऊपर वह कम होती जाती है। यह बालू के स्थानांतरण की प्रक्रिया है। यह प्रक्रम लम्बे समय

* कुछ दूरी तक गिरने के बाद कोई गिरती हुई वस्तु एक विशिष्ट मान के वेग से गिरने लगती है। इसे उस वस्तु का सीमांत वेग कहते हैं।

तक जारी रहता है ऊपर चलने वाली बालू की मात्रा में कमी आती जाती है। घुटने तक बालू के स्थानांतरण का प्रवाह अक्सर लम्बे अरसे तक जारी रहता है।

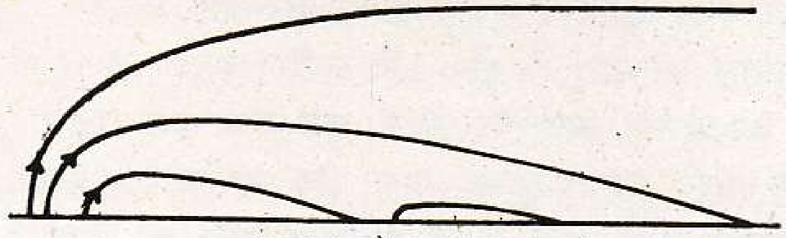
मरुस्थल के बालुई धरातल पर उठाव (Ridge) और उर्मिकाएँ या लहरियाँ (Wave) दोनों स्थितियों में बनती हैं जबकि बालू हट रही हो अथवा कहीं जमा हो रही हो। अब कौन-सी आकृति बनेगी – लहरों की कतार या उठाव। यह मूलतः दो बातों पर निर्भर करती है – (i) पवन मंद बह रहा है या तूफानी और (ii) उस स्थान पर बालू मिट्टी का जमाव हो रहा है या वहाँ से वह हट रही है। भौतिकशास्त्री वायु वेग का एक सीमांत मान निश्चित कर देते है जिससे कम की स्थिति में एक प्रकार की आकृति बनती है और जिससे अधिक की स्थिति में दूसरे प्रकार की आकृति बनती है। यह सीमांत वेग बालू कण के आकार और आकृति द्वारा निर्धारित होता है। जबकि बह रहे पवन की गति उन बड़े कणों के लिए सीमांत मात्रा की हो तो बालू के हटते समय उस स्थान पर लहरियाँ बनेंगी। एक लहर और दूसरी लहर के बीच की दूरी का औसत मान एक-सा रहता है। स्मरण रहे यदि उन्हीं बड़े कणों के लिए, हटते समय पवन का बहाव सीमांत मान से कम होता है तो वहाँ उठान या उठाव बनते हैं।



बालू में उर्मियाँ
चित्र 2.5

अब हम किसी स्थान पर पवन द्वारा लाई जा रही बालू के जमा होने की अवस्था पर बात करते हैं। ऐसा भी होता है कि जमाव होता है और आकृति न बनकर वहाँ सपाट धरातल रह जाता है। यदि लाये जा रहे बालू के कण तेजी से आकर कहीं जमा हो रहे हैं तो वहाँ का धरातल समतल बन जाता है। आकृति तो धीमा बहाव या संतुलित चाल की बालू द्वारा आती है। ऐसी अवस्था में बालू जब किसी स्थान पर जमा होती है तो उर्मिकाएँ या लहरें बनती हैं। चित्र 2.5 इन तरंगों की आकृति का तरंग दैर्ध्य (Wave length) वायु की शक्ति से निर्धारित हैं। तुम तरंग दैर्ध्य शब्द से तो परिचित होगे ही। कोई तरंग या लहर जहाँ उतार (गर्त) और चढ़ाव (शृंग) की आकृति हो तो दो निरंतर के शृंग शीर्षों के मध्य की दूरी या दो गर्तों के मध्य की दूरी एक तरंग दैर्ध्य (सेंटीमीटर) कहलाता है। स्थिर जल में कंकड़ डालने से लहरें बनती हैं और हमें कुछ समय बाद शृंग-गर्त का सिलसिला नजर आता है। ऐसे ही एक सिरे पर बंधी रस्सी को दूसरे सिरे से हिलाने पर हमें उसमें शृंग और गर्त क्रमवार बनते नजर आते हैं। तुम्हें ध्यान होगा, सही अर्थों में किन्हें हम यांत्रिक तरंगें कहेंगे? इस पर चर्चा हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। बालू की लहरें बनने के बाद स्थिर रहती हैं। उनसे कोई ऊर्जा का स्थानांतरण तब नहीं हो रहा है। गतिकी अर्थ में वे तरंगें नहीं हैं।

अब हम बालू कणों के आगे की ओर बढ़ने की क्रिया पर चर्चा करते हैं (चित्र 2.6)। तुम जानते ही हो कि वैज्ञानिक अध्ययन में तुलनात्मक उदाहरण



बालू कणों का उठना

चित्र 2.6

लेकर अर्थ क़ो उचित रूप में संप्रेषित किया जा सकता है। सादृश्यताएँ उपयोगी होती हैं फिर भी यह स्मरण रखना चाहिए कि हम तुलना हेतु लिए गए पदार्थ को, व्यवहार समझने के लिए, एक सीमा तक उपयोग में लेते हैं। ऐसा इसलिए कि दोनों में वे ही वस्तुएँ नहीं बल्कि भिन्न वस्तुएँ हैं। बालू के गतिकी व्यवहार को पिंगपोंग गेंद की गतिकी व्यवहार से तुलना कर कुछ-कुछ समझना आसान जान पड़ता है। वस्तुतः भौतिक वैज्ञानिकों ने बालू के कणों की पृथक तथा समूह गति, उसकी आपस में टक्कर, फिर जिस धरातल पर वे बढ़ रहे हैं उससे टक्कर आदि अध्ययन हेतु पिंगपोंग गेंद के संघट्टों के सूत्र प्रयोग में लिए थे। उससे उन्हें वांछित निष्कर्ष प्राप्त हुए। सबसे पहली ध्यान देने योग्य बात यह है कि पवन का दाब बढ़ने से बालू के कण क्षैतिज या धरातल के समानांतर गति पाते हैं, मार्ग में वे किसी से टकराते हैं फिर ऊपर की ओर उठते हैं। आगे की प्रक्रिया किस तरह की होगी यह धरातल की दशा से संचालित होता है।

(i) धरातल कंकड पत्थर का बना है : अर्थात् ऊबड़-खाबड़ धरातल है, जिस पर उठान और गड्ढे हैं और उठान हैं भी अलग-अलग कोण के। इन पर बालू का संघट्ट टकराने का व्यवहार प्रत्यास्थ पिंगपोंग गेंद की भांति होता है बालू टकरा कर ऊपर उठती है। वायु का प्रवाह अपने दाब से बालू को धरातल के समानांतर बढ़ाता है और एक दूरी तय कर बालू नीचे गिरती है। धरातल के ठोस मगर खुरदरे होने के कारण वह टकरा कर फिर से ऊपर उठती है, वायु दाब से क्षैतिजतः आगे बढ़ती है, कुछ दूरी पार कर गिर जाती है। यह क्रिया बार-बार दोहराई जाती है।

(ii) धरातल पर बालू ही हो : यदि जमीन बलुआ ही है तो उससे उठने की प्रक्रिया का प्रकार भिन्न है। इसमें कुछ-कुछ इस प्रकार हो सकता है कि ऊपर से गिरा हुआ बालू का कण नीचे धरातल पर बिछी बालू के दो कणों से टकराये यानी उन्हें ऊर्जा दे। ऐसा होने पर टकराने वाला ऊपर से आया हुआ कण तो वहीं ठहर जाता है और ऊर्जा पाकर नए कण उठते

हैं। इन कणों को वायु अपने दाब से आगे की ओर धकेलती है। क्षैतिज दिशा में वे आगे बढ़ते हैं। इस तरह नए-नए कण वायु की दिशा में आगे की ओर बढ़ते जाते हैं। इनके धरातल पर जमने पर ऊपर बताए गुणों के अनुसार उर्मिकाएँ या कटक अथवा उठान (Ridge) बन जाते हैं। वायु की गति, जमाव के धरातल की दशा, कणों का आकार वे कारण हैं जो कि उपयुक्त सा कोई आकार या समतल धरातल बना दें। सुन्दर दूर-दूर तक फैली बालू की उर्मिकाएँ या लहरें उनकी नियमितता, आकार, ऊँचाई तथा दोहराव और तरंग दैर्घ्य भी इन्हीं कारणों से निर्धारित होता है। उर्मिकाओं को समीप से देखने पर हम पाते हैं कि स्थूल या मोटे आकार के कण गर्त (Trough) पर एकत्रित होते हैं। तुम्हें यह बात तो आशानुरूप ही लगेगी कि यदि धरातल समतल बन जाए तो वह अस्थाई होगा। ऐसा धरातल बयार में जरा तेजी आते ही प्रभावित हो जाता है और वहाँ के कण गति पा लेते हैं, आगे की यात्रा हेतु।

अब तक तुम जान चुके होगे कि सामान्य स्थानों की तुलना में मेरी भूमि मरुस्थल में पवन का एक विशिष्ट स्थान है। वह बालू को बनाती भी है और बालू के समूह को मनमोहक आकृतियाँ भी प्रदान करती है। ये आकृतियाँ प्रकृति का चरम नियम भी व्याख्यायित करती हैं कि बनना-मिटना और फिर-फिर बन-बन कर मिटना-बनना निरंतर जारी रहता है। पवन की क्रिया द्वारा मरुभूमि में निम्न आकृतियाँ बनती हैं :

(अ) रास्ते की रूकावट पर बनी आकृति

मरुस्थल में कहीं-कहीं चट्टान और झाड़ी के अवरोध होते हैं। वायु से ऊर्जा पाकर उठी और फिर बढ़ चली बालू के लिए ये प्रायः अस्थाई रूकावटें हैं। हाँ बड़ी चट्टानें आदि तो स्थाई अवरोध के कारण भी हो जाते हैं। ये बालू को आगे बढ़ने में रूकावट डालते हैं। बालू वहीं एकत्रित होती रहती हैं। बालू छाया (Sand Shift) भी इसी कारण से होती हैं। इनकी कोई विशिष्ट आकृति नहीं होती है। एक बड़ी-सी ढेरी बन जाती है।

(ब) टीबे या ढूह (True Dunes)

बालू से बना टीला या टीबा या धोरा या ढूह एक स्पष्ट आकृति है। टीले की एक चोटी होती है। विस्तार लिया हुआ कोई अकेला स्थान हो और उस ओर बालू बढ़ी आ रही है तो स्वतंत्र रूप से वहाँ एक अकेला टीला बन सकता है। ये वास्तविक टीबे या ढूह कहलाते हैं। जो वहाँ बने भी रह सकते हैं और स्थान परिवर्तित भी कर जाते हैं। मरुस्थल में यही धोखा, जोकि मृग तृष्णा से भी कहीं बड़ा है, हो जाता है कि जिस ढूह को आपने कोई चिह्नित स्थान या पहचान बनाया था वह पीठ पलटते ही लोप हो जाये। ऐसा होता भी है कि उस भरोसे के निशान को न पाकर यात्री भटक जाते हैं। मरुस्थल में कहीं ढूह अकेला ही होता है तो कहीं टीलों की कतारें। बालू के एकत्रित होने के साथ टीला वृद्धि पाता है। विकास के इस काल में उसका एक फलक ढलाननुमा होता है। उसे ढलान फलक (Slip face) कहते हैं। एक वास्तविक ढूह में ढलान फलक होना आवश्यक हैं।

एक वास्तविक ढूह बनने के प्रक्रम को समझना आसान कार्य है। ऐसा करने के लिए हमें एक ढूह को नजदीक खड़े रहकर गौर से देखना होगा। अधिकांश वैज्ञानिक कारण प्रेक्षण से स्वतः स्पष्ट हो जाते हैं। वही बात टीले की बनावट पर लागू होती है। एक ढेरी पर आती हुई पवन की प्रक्रियाएँ देखें तो साफ लगता है कि टीले के शीर्ष भाग की पवन की गति तेज है और वहाँ की बालू तेजी से आगे की ओर बढ़ना चाहती है। इस कारण से वहाँ कटाव होता रहता है। नीचे का भाग इस तेजी से कट नहीं सकता है इस कारण से वह बना रहता है और ऊपर से झुकाव बढ़ता जाता हैं। जब यह कोण 34^0 के समीप पहुँच जाता है तो कटने और जमने का कार्य मंद हो जाता है। इस टीले को जरा दूर से देखें चित्र (2.7) तो वह अर्धचंद्राकार नजर आता है। इसे बरखान ढूह (Barchan dune) भी कहते हैं। कहीं-कहीं तो इन चन्द्राकार टीलों की लम्बी लड़ी भी देखी जा सकती है। एक ओर आकृति के टीले भी मरुस्थल में खूब देखने में आते हैं ये



चन्द्राकार टीले का बनना
चित्र 2.7

तलवारनुमा (Seif dune) होते हैं। अर्द्धचन्द्राकार में सममित न होकर एक ओर फैले होने के कारण ये इसी नाम से जाने जाते हैं। प्रकृति की विशेषता ही है कि एक ही स्थान पर दोनों प्रकार अर्थात् अर्द्धचन्द्राकार और तलवारनुमा एक साथ नहीं होते हैं। यह ठीक भी है क्योंकि ढूह का बनना, पवन की दिशाएँ, उसकी चाल पर निर्भर होता है। कण का आकार भी एक महत्त्वूपर्ण घटक होता है। एक ओर ढूह आकृति भी बहुतायत में देखी गई है। यह आकृति प्लेटफार्म जैसी लम्बी और सपाट होती है इसके लिए व्हेलपीठ (Whale back) नाम प्रचलित है। अक्सर यह आकृति चन्द्राकार और तलवारनुमा टीले के पूरी तरह न मिटने पर शेष बची हुई आकृति हैं जो मोटे कणों से बनी हुई होती हैं। एक चन्द्राकार टीले की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई दूसरे से नितांत भिन्न हो सकती है। लगभग 400 मीटर लम्बाई चौड़ाई के अधिकतम आकार लिए चन्द्राकार टीले होते हैं। इसे वृहदाकार भी ऊँचाई में बहुत अधिक होना चाहिए वैसा कोई नियम नहीं है। चन्द्राकार टीले एक साथ जुड़ जाते हैं । वायु की गति ढीली पड़ने पर हम देखते हैं इनसे आगे के चन्द्राकार छिट पुट होकर इक्के-दुक्के ही रह जाते हैं, चन्द्रमा-सी कटी हुई दिशा स्पष्ट संकेत देती है कि तब पवन उत्तल दिशा (Convex) से अवतल (Concave) दिशा की ओर प्रवाहमान थी। तलवारनुमा टीले की आंतरिक संरचना चन्द्राकार से भिन्न प्रकार की होती है। इस संरचना प्रक्रिया का पता भूवैज्ञानिक ढूह की विभिन्न गहराई से लिए बालू के नमूनों



बालू का टीला
चित्र 2.8

से लगाते हैं। तलवारनुमा टीलों की कतारें भी लम्बी दूरी तक देखी जाती हैं। यह सब इस पर निर्भर है कि विशिष्ट पवन प्रवाह कितने समय तक जारी रहा। मिश्र के बलुआ समुद्र से ऐसे टीले 100 मीटर ऊँचाई के भी देखें गए हैं। वैसे साहित्य में 220 मीटर ऊँचाई के तलवारनुमा टीले दक्षिणी ईरान में पाए जाने का भी संदर्भ उपलब्ध है। इनकी चौड़ाई तो ऊँचाई से छः गुणा अधिक हो सकती है। व्हेल पीठ टीलों की कतारें तो और भी लम्बी देखी गई हैं चित्र (2.8) । मिश्र के मरुस्थल में ही 1 से 3 किलोमीटर लम्बे चौड़े और 50 मीटर की ऊँचाई के ऐसे टीले बहुत सारे हैं।

ढूह बनने की प्रक्रिया और उनके अस्तित्व तथा विस्तार पर जानकारी के पश्चात् संक्षेप में वहाँ की बालू के आकार पर भी कुछ जानकारी पा लेना उपयुक्त जान पड़ता है। टीलों पर किए गए शोधकार्य बताते हैं कि

उसके शीर्ष पर पाई जाने वाली बालू एक समान होती है। यह आकार की परास उसके स्रोत पर निर्भर है। नदी के पाट से आई हुई बालू या समुद्र के किनारे से आई बालू के टीलों पर पाई जाने वाली बालू की परास संकीर्ण होती है। यदि रेत बालुई चट्टान के टुकड़ों से बने कणों की है तो उसमें मोटे कणों की अधिकता होने से कणों के आकार की परास बड़ी हो जाती है। भारतीय मरुस्थल थार में यह परास बड़ी हैं। वस्तुतः यहाँ कटाव क्षेत्र में कंकड़ और मोटे-मोटे कण भी पाए जाते हैं।

ऊपर हमने मरुस्थलीय धरातल पर बालू कणों की गति एवं उनसे बनी छोटी-मोटी आकृतियों पर चर्चा की है। अब यह आवश्यक जान पड़ता है कि जब वे एक बार जमा हो गए तो फिर वे कैसा व्यवहार करते हैं, इस पर भी कुछ जानकारी ली जाए। मरुस्थल की जिन्होंने यात्रा की है चाहे पैदल या जीप आदि पर उनका अनुभव बताता है कि किसी बलुआ धरती पर बहुत दूर तक बिना धंसे चला जा सकता है। नीचे की जमीन ऊपरी दाब से विचलित नहीं होती है। बैठकर यदि अंगुली से उस सतह को कुरेदें तो स्पष्ट लगता है कि भूमि की यह कठोरता धरती के किसी चिपकाने वाले पदार्थ या कणों के मध्य किन्हीं संसंजक बल (Cohesion) के कारण नहीं आई है। कण ठसाठस भरे होने के कारण यह धरातलीय गुण हैं। मगर यह भी स्पष्ट अनुभव है कि आप चल रहे हैं और कोई बनावट में परिवर्तन भी नहीं है फिर भी एकाएक धंस जाते हैं घुटनों तक या और भी अधिक। वहाँ की तथा पास के ठोस धरातल की मिट्टी की बनावट को देंखे तो कोई अन्तर भी नहीं है। ऐसे "ताल" अक्सर वहाँ होते हैं जहाँ कि पहले कोई टीला था और वह उड़ चला। ढेरी के नीचे का बचा हिस्सा जो समतल धरातल का निरंतर अंग बना है वहीं यह चौकाने वाला स्थान होता है। मरुस्थल में कुछ हरे-भरे टुकड़े जहाँ कि कुछ नमी हो वह स्थान इस मुलायम धूल पर होते हैं।

बालू का गायन : तुम्हें यह जान कर आश्चर्य होगा कि रात के सन्नाटे

में जब कि सब कुछ निःशब्द होता है तो मैं अपनी मौज में गाने लगती हूँ। मरुवासी लोगों ने मेरे इस गायन के प्रति अनेकों धारणाएँ बना रखी हैं। मेरे इस रहस्यमयी व्यवहार का पता लगाने में तो वैज्ञानिक ही सामर्थ्यवान हैं मगर मेरे इस रहस्य को सुनता हुआ श्रोता भय मिश्रित आश्चर्य में खो जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि मेरा यह गायन प्यासे पथिकों को मौत की ओर धकेलने वाला है, कुछ स्थानीय लोगों का मानना है कि धरती के नीचे स्थित किसी मंदिर में हो रही आरती की यह झालर है, जब कि एक स्थान पर तो इसे जिन्न का रोष में आ जाना समझा जाता रहा है। ऐसी बहुत सारी दन्तकथाएँ लार्ड कर्जन ने मेरी अनेकों बस्तियों से इकट्ठी की थी। मगर सच तो यह है कि इन कपोल कथाओं से कहीं अधिक आकर्षक मेरा यथार्थ है। वैज्ञानिक आर.ए. बेग्नॉल्ड, जिनका मेरे भौतिकीय व्यवहार पर मौलिक कार्य है, ने मुझे सुना था। उनका लिखा हुआ वर्णन इस प्रकार है : "मिश्र के मरुस्थल में आबादी से सैकड़ों मील दूर मैंने इसे सुना। शांत रात थी कि यकायक इतनी तेज धमाकेदार आवाज़ हुई कि मुझे अपने पास सोये हुए मित्रों को (वह ध्वनि) सुनाने हेतु जगाने के प्रयास में जोरों से चिल्लाना पड़ा। तभी अन्य स्थान में भी हलचल शुरू हो गई और वे स्थान भी पहले के साथ में अपनी रागिनी अलापने लगे। ये स्वर इतने समीप के थे कि मुझे उनसे उत्पन्न विस्पंद* (Beat) भी सुनाई दे रहा था। यह अनूठा समूह गायन पाँच मिनटों से अधिक समय तक जारी रहा होगा कि तब कहीं शांत हुआ और जमीन पर उठी कंपकपी थमी।" प्रेक्षण पर पता चला कि यह उत्पन्न स्वर किसी टीले के झुकाव वाले धरातल के नीचे से कण हौले-हौल खिसकने के साथ ऊपर की ओर उठता है।

ऐसी आवाज़ पैदा करने वाली रेत समुद्र तट पर तथा टीले के झुकाव वाले धरातल या बहाव में पाई जाती है। समुद्र तट की रेत द्वारा उत्पन्न

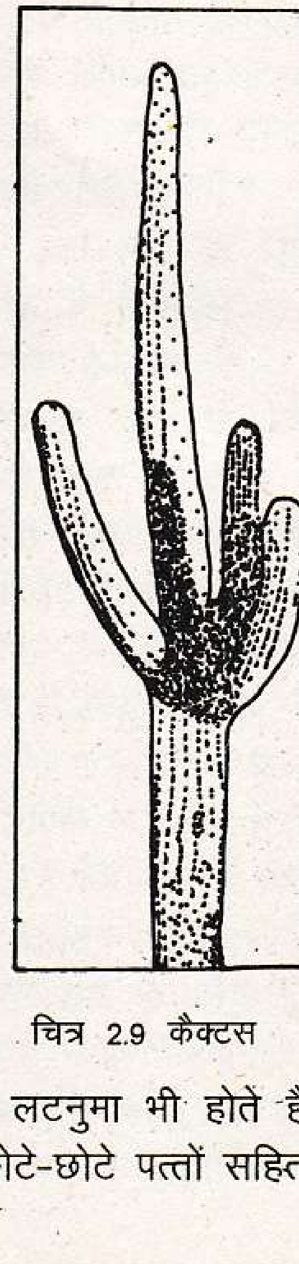
* जब दो (या अधिक) आवृत्तियों का मान लगभग समान हो तो उनके अंतर के कारण सुनाई देने वाली ध्वनि का उतार-चढ़ाव विस्पंद है।

ध्वनि तथा मरुस्थल की बालू द्वारा उत्पन्न ध्वनि के प्रकार में स्पष्ट भिन्नता है। सीटी मारती तटीय बालू विश्व के बहुत सारे स्थानों पर पाई जाती है। समुद्र तट पर बने रेत के ढेर पर चलने से, या उस पर तेजी से हथेली चलाने से या किसी छड़ी को उसमें तेजी से घुसेड़ने पर सीटीनुमा आवाज निकलती हैं। बरसात के बाद सूखी बालू हो तो यह प्रक्रिया सायास उत्पन्न की जा सकती है। पेंसिल या छड़ी को 90 सेंटीमीटर प्रति सेकण्ड से थपथपाकर 'नार्थ वेल्स' रेत में प्रयोग हेतु ध्वनि पैदा की गई थी। बालू के ध्वनि की आवृत्ति 800 हर्टज से 1200 हर्टज तक बदली गई जबकि छड़ी की गति में अनुकूल परिवर्तन किए गए। उस प्रयोग में यह देखा गया कि सारे ही कण एक दूसरे के सहयोगी स्वर में कंपन कर रहे थे।

मरुस्थल में लिए गए प्रेक्षण यद्यपि कुछ भिन्न स्थिति बयान करते हैं फिर भी मौलिक प्रक्रिया वैसी ही है। 'कालाहारी' मरुस्थल में उठे उस बालू नाद के लिए वैज्ञानिक नाम 'दहाड़ना' दिया गया है। ये बालू अपनी चरम स्पष्टता के साथ तब दहाड़ती है जबकि हल्की बरसात हो जाए अर्थात् धरातल से छोटे-छोटे धूलिकण आदि हटा दिए गए हों। यद्यपि वैज्ञानिकों में इस प्रक्रिया उत्पत्ति के कारणों के बारे में मतभेद है फिर भी वे सहमत हैं कि आवाज़ सुस्पष्ट होती है जबकि : कण एक ही आकार के और गोलीय हों तथा वे क्वार्टज पदार्थ से बने हुए हों। सागर तट की रेत द्वारा उत्पन्न ध्वनि की आवृत्ति मरुस्थल के ढूह के पिछले हिस्से से उत्पन्न ध्वनि से अधिक होती है। एक प्रयोग में 132 हर्टज और 264 हर्टज आवृत्तियाँ मरुस्थलीय बालू में पाई गई हैं। बालू का आकार इन स्थितियों में क्रमशः 0.2 मिलीमीटर और 0.35 मिलीमीटर था। इसकी तीव्रता का विवरण है कि 600 मीटर तक की दूरी पर यह तूफान-सी गर्जना लिए थी। दिखने में ऐसा लगा मानो बालू इस तरह नीचे की ओर बहे जा रही है जैसे कि लहराता हुआ पानी बढ़ रहा हो। बालू में सीटीनुमा ध्वनि कम मात्रा की बालू ढेरी पर पेंसिल द्वारा पीट-पीट कर उत्पन्न की जा सकती है जबकि धमाकेदार आवाज़ के

लिए तो बड़े-बड़े ढूहों की आवश्यकता होती है।

कैक्टस : इस पुस्तक के लेखक से एक बार एक विदेशी मरु वैज्ञानिक की भेंट हुई। उसने सुझाया – तुम अपनी बालू मिट्टी में नागफनी की खेती क्यों नहीं करते? चौकाने वाली ही बात थी, अतः मैं सुझाव पर दंग था। मरुस्थलवासी हूँ हमारे यहाँ पशुपालन का व्यवसाय है और अन्य वनस्पतियाँ हैं जिनके फल, बीज, फलियाँ खूब चाव से खाई जाती हैं और उनका भारत भर में छोटा-बड़ा बाजार भी है। कांटों भरे बदसूरत पौधों की खेती में क्या मिलेगा? कोई शहरी अपनी गृहवाटिका में कुछ चुने हुए कैक्टस या गूदेदार पौधों के गमले रखले तो नर्सरी तैयार की जा सकती है। मगर खेती? वह हँसा था फिर गंभीरता पूर्वक बोला-बहुत अच्छा व्यवसाय है अमेरिका में। इनमें से कुछ नागफनियों का रस बलवर्द्धक होता है, अतः पिया जाता है। फल रस की तरह यह ऊँचे दामों में बिकता है। इस तथ्य को जानकर मैं और अधिक चकित हो उठा था।



चित्र 2.9 कैक्टस

मरुस्थल में कोई ऐसी चीज नहीं उगती जो उपयोग की न हो। वहाँ कहावत है : ऊँट छोड़े आकड़ा साली छोड़े कांकरा। ऊँट आक नहीं खाता और बकरी कंकर – यहाँ सब काम का है। मरुस्थल के इन कांटेदार पेड़-पौधों के लिए कैक्टस या नागफनी या मरुद्भिद (Xerophyte) नाम प्रचलित हैं। यहाँ कुछ बिना कांटेदार सरस या रसदार (Succulent) पौधे भी होते हैं। ये कांटेदार संरचनाएं सुन्दर और अक्सर सममित होती हैं। कैक्टस गांठनुमा भी होते हैं तो वे लटनुमा भी होते हैं (चित्र 2.9)। पत्तों रहित लम्बी-लम्बी डालियों वाले या छोटे-छोटे पत्तों सहित

टेढ़ी आकृति की भुजाओं वाले। ठिगने भी और अच्छे कद के भी। अमेरिका के मरुस्थल मरुद्‌भिद पौधों की भिन्नता में सर्वाधिक धनी है। थार मरुस्थल में डण्डा थोर (Euphrobia Nerrifolia) खूब उगता है। यह कांटेदार घनेरी झाड़ी हो जाती है। दरअसल इसकी डाली में से डालियाँ फूटती जाती हैं और इसकी चौड़ाई बढ़ती जाती है। प्रायः डाली की मोटाई तीन-चार सेंटीमीटर हो सकती है। लम्बाई पाँच मीटर तक पहुँच जाती है। गर्मी में यह बदरंग सूखी-सूखी-सी भद्दी दिखने वाली नागफनी कुछ नमी पाते ही हरितिमा ओढ़ लेती है। गूदेदार पत्तियाँ आती हैं और फिर उस पर ढेरों लाल-लाल छोटे-छोटे फूल। वैसे तो नागफनियों के सैंकड़ों प्रकार हैं मगर यहाँ उनमें से कुछ पर चर्चा करना उचित रहेगा जो रोचक हैं। साउगारो (Saugaro) एक बहुचर्चित कैक्टस है। अमेरिका में इसके वृक्ष हो जाते हैं। अब कैक्टस 50 फुट लम्बा और 10 टन भारी हो जाय तो वह तो विशाल वृक्ष की कोटि में ही आ गया न। धरती के भीतर भी इसकी जड़ें चारों ओर 30-35 फुट तक जाल बिछा देती हैं। वस्तुतः यह धीमी गति से बढ़ने वाली वनस्पति है। सौ वर्ष की उम्र पाते-पाते वह 35-40 फुट ऊँचाई पा लेता है। इसमें रेगिस्तानी पशु पक्षियों को घर तथा भोजन दोनों उपलब्ध हैं। ढोलाकार नागफनियाँ अपने भीतर पानी का भण्डार लिए होती हैं। ये दिखती भी खूबसूरत हैं। कुछ नागफनियों के प्रकार एक मरुस्थल में बहुतायत में होते हैं तो दूसरे मरुस्थल में वे बहुत ही कम। ऐसे ही नागफनी का एक प्रकार – चोल्ला (Cholla) है। यह चिड़ियों की प्रिय झाड़ी है। इसमें मरुस्थली चिड़ियाएँ अपनी वंशवृद्धि करती हैं। अमेरिकी मरुस्थल में क्रेसोटे बुश (Cresote Bush) जो कि झाड़ीनुमा वनस्पति है बहुतायत में पाई जाती हैं। गर्मियों में इसके पत्ते झड़ जाते हैं और निर्जीव-सी हो जाती हैं। बरसात की डालियाँ फूटने लगती हैं। कोंपलों के साथ ही पीले-पीले फूल निकल आते हैं। इसी तरह का एक और मरुस्थलीय पौधा ओकोटिल्लो (Ocotillo) है। गर्मी के मौसम के साथ यह भी सूख जाता है।

यह मरुद्भिद् पौधों का सामान्य व्यवहार है कि वे गर्मी में अपने संचित जल की बूँद-बूँद तक का संरक्षण करते हैं। ऐसा करने के लिए वे अपना वाष्पन क्षेत्र कम करते हैं। पत्तियों का झड़ जाना इस प्रकार लाभकारी होता है। डाली की बाहरी शुष्क त्वचा पवन तथा धूप के आघात को सहन करते-करते निष्प्राण-सी हो जाती है। समुचित समय आने पर वंशवृद्धि हेतु ये वे सारे क्रम और क्रियाएँ करते हैं जैसे कि सामान्य पेड़ पौधे। फूल इनके भी रंग बिरंगे होते हैं और आकर्षक भी कि कीट-पतंगे उन पर झूमें और सेंचन क्रिया हो। वैसे कुछ कैक्टस (और सकूलेण्ट) के फूल इतने बदबूदार होते हैं कि कोई दूर से ही लौट जाय। प्राकृतिक आपदाओं को झेलने की मरुभूमि के पेड़ पौधों में अद्भुत क्षमता है। नागफनियाँ टूटने या छिलने पर नष्ट नहीं हो जातीं। वे अक्सर अपनी मरम्मत स्वयं कर फिर जीवित हो उठती हैं। टूट कर जमीन पर पड़ी डाली का कोई हिस्सा जड़ बन कर जमीन में गड़ जाता है और अक्सर जीवन का नया क्रम आरम्भ हो जाता है।

पशु और पक्षी : मरुस्थल में पाए जान वाले खग-मृग पर हम विस्तार से चर्चा कर चुके हैं। यहाँ पर जब कि बालू के गुण-अवगुण पर केंद्रित हैं तो उचित होगा कि पशु और पक्षी के द्वारा उठाये जाने वाले कष्टों का संक्षेप में जिक्र करें। मोटे तौर पर विशाल मरुस्थल में चिड़ियाएँ कठिनाई पूर्वक जीवन यापन करती हैं। वे बिल बना कर छुप नहीं सकती इसलिए उन्हें अपने में ताप सहने की अधिक क्षमता पैदा करनी होती है। ऊष्मा की प्रचंडता से उनकी रक्षा कुचालक पंख करते हैं। फिर उनके रक्त का तापमान अन्य जीवों से अधिक होता है। इस तरह वायुमण्डल से तापान्तर कम होने के कारण बाह्य ऊष्मा उन्हें अधिक तकलीफदेह नहीं होती हैं। हाँ अपने में विद्यमान अधिक ऊष्मा की मात्रा ये जब चाहे तो पंख फड़फड़ा कर त्याग सकते हैं। ऐसा करने में उनसे जल की मात्रा भी त्यागी जाती है मगर यह क्षतिपूर्ति वे पानी के स्थानों तक उड़कर पूरी कर लेती हैं। जबकि गर्मी प्रचण्ड

हो और अरसे तक पानी उपलब्ध न हो तो पशुओं का हाल बुरा हो जाता है। भयंकर गर्मी में मनुष्य शरीर 24 पिण्ट पानी तक पसीने में बहा देता है। एक प्यासा ऊँट मरुस्थल में जब अपना दस प्रतिशत वजन खो देता है तो वह बेहाल हो जाता है। उसकी मृत्यु समीप ही है तब तो। इस तरह प्राणांत दर्दनाक होता है। रक्त का प्लाज्मा द्रव बहुत कम हो जाता है। इस कारण वह गाढ़ा पड़ जाता है। खून का शरीर में प्रवाह मंद पड़ जाता है। तब शरीर की भीतरी गर्मी का ह्रास मंद हो जाता है। शरीर का बढ़ता जाता दाह तब मौत का कारण होता है।

पवन सुरंग : किसी भी प्रक्रिया की सही-सही जानकारी स्वस्थान पर ही प्रयोगों द्वारा संभव है। बालू का व्यवहार मरुस्थल में ही जाना जाए तो वह अधिक तथ्यात्म्क होगा। व्यावहारिक तौर पर हमें अपनी प्रयोगशालाओं में नियंत्रित परिस्थितियों में प्रेक्षण लेने होते हैं। वे यथातथ्य तो नहीं होते परन्तु सच्चाई के नजदीक होते हैं। प्रयोगशाला में हम दिए गए समय में वांछित परिवर्तन कर सकते हैं एवं उसी प्रयोग को बार-बार दोहरा भी सकते हैं। मगर प्रयोग हेतु हमें नमूना प्राकृतिक स्थान से उठा कर लाना होता है। ऐसा करने में प्रायः वही बात नहीं रहती जो कि उसकी नैसर्गिक स्थिति में थी। प्राकृतिक परिस्थिति से वह कम से कम अस्तव्यस्त हो इस कारण से नमूना उठाने के कुछ विशेष उपकरण प्रयुक्त होते हैं। मृदा का नमूना लेने के उपकरण सेण्ड सेम्पलर (Sand Sampler) कहलाते हैं। इनके विभिन्न आकार हैं जो कि प्रयोजन के अनुसार काम में आते हैं। एक सामान्य सेण्ड सेम्पलर खोखली बेलनाकार धातु की एक मीटर नली होती है जिसका व्यास 4-6 सेंटीमीटर का होता है। इसकी लम्बाई में कटा हुआ खुला भाग होता है। एक सिरे पर ठोस धातुई शंकू और दूसरे सिरे पर पकड़ने का कुँदा होता है। इसे तेजी से उस स्थान में घोंपा जाता है जहाँ से रेत का नमूना उठाना है। एक चक्र वृत्ताकार घूमाने पर उसमें गहराई तक का नमूना कटे स्थान से भर जाता है। इसे खींच कर निकाल देते हैं और अलग-अलग

गहराई के नमूने थैलों में एकत्रित कर लेते हैं। जब कि धरातलीय बालू पर प्रयोग करने होते हैं तो लम्बे क्षेत्र से यादृच्छिक तौर पर कई नमूने उठा मिश्रित किए जाते हैं। उन्हें प्रयोगशाला में, कुछ विशेष प्रयोजनों में धोया और 120^0 तक सुखाया भी जाता है।

यदि अलग-अलग आकार की बालू पर प्रयोग किए जाने होते हैं तो छटाई सीव शेकर (Sieve Shaker) से की जाती है। इसमें अलग-अलग छिद्र की छलनियाँ होती हैं जिसमें एकत्रित बालू विशिष्ट आकार के परास की होती है। इस तरह छाँटना यांत्रिक विश्लेषण (Mechanical Analysis) कहलाता है। आकृति देखने का एक प्रचलित तरीका कणों को सूक्ष्मदर्शी में देख कर तुलना करना है। उदाहरण स्वरूप हमने पिछले अध्याय में कहा था कि थार मरुस्थल के कुछ नमूनों से प्राप्त परिणामों के अनुसार औसत आकार 135 माइक्रोमीटर तथा आकृति 0.75 गोलाकार हैं।

पवन के वेग के साथ धरती पर बिछी बालू किस तरह उड़ान भरती है, वह किस तरह आगे बढ़ती है, उर्मिकाएँ कैसे बनती हैं, उठी बालू कैसे धरातल पर आ ठहरती हैं, ढूह कैसे बनते हैं आदि प्रक्रियाओं को प्रयोगशालाओं में उत्पन्न करना तथा उनका निरीक्षण करना पवन सुरंग (Wind Tunnel) नामक उपकरण से संभव हैं। इस उपकरण में नियंत्रित परिस्थितियाँ उत्पन्न कर प्रयोग दोहराये जाते हैं। एक अति सरल प्रकार की पवन सुरंग से तात्पर्य है कि एक लम्बी नलिका जिसमें बालू बिछा हो और जिस के एक सिरे से धोंकनी द्वारा पवन धोंकी जाय। इस प्रकार फूंकनी या धोंकनी से प्रवाहित वायु द्वारा तले पर बिछी बालू उठती है जो कि कुछ-कुछ उसी प्रकार की क्रिया है जैसी कि मरुस्थल में तेज पवन चलने पर होती है। व्यवहार में फूंकनी की अपेक्षा चूषनी (Suction) प्रक्रिया अधिक नियंत्रित है, अतः प्रयोगशाला में वायु चूषनी सुरंग काम में ली जाती है। इस क्षेत्र के प्रसिद्ध वैज्ञानिक आर.ए. बेग्नॉल्ड ने पवन सुरंग प्रयुक्त की थी। एक लम्बी चौकोर काँच की सुरंग जिसका आधार लकड़ी का है, के एक घण्टीनुमा सिरे से

वायु खींची (चूसी) जाती है जो कि दूसरे सिरे पर कुछ ऊँचाई पर चल रहे पंखे द्वारा फेंकी जाती है। पंखे के नीचे के बड़े सारे संदूक में प्रयोग हेतु बालू रखी होती है। सुरंग की लम्बाई प्रयोग के अनुसार खण्डों को जोड़ कर घटाई-बढ़ाई जा सकती है। एक सामान्य सुरंग 30 फुट लम्बी होती है। इस पर लगभग आधा इंच मोटाई की बालू परत बिछा दी जाती है। कुछ प्रयोगों में पंखे के नीचे बालू की मोटी परत रखी होती है कुछ में वहाँ केवल रिक्त स्थान ही होता है। जबकि कणों द्वारा तय किया गया पथ ज्ञात करना होता है तो काँच के पारदर्शी भाग को प्रकाशित कर चित्र लिए जाते हैं। अध्ययन की माँग के अनुसार इस उपकरण में अन्य यंत्र भी जोड़ दिए जाते हैं। पवन सुरंग का उपयोग वायु ऊर्जा से चलने वाले उपकरणों की जाँच में भी किया जाता है। भवनों पर किए जा रहे शोध कार्यों में भी यह उपकरण उपयोगी है।

मरुस्थलीकरण

मोटे तौर पर मरुस्थलीकरण (Desertification) से तात्पर्य होता है कि बालू मिट्टी का या बालू के टीलों का उपजाऊ भूमि पर अतिक्रमण। वस्तुतः ऐसा तो बहुत कम मात्रा में हो रहा है, मगर बंजरता में वृद्धि हो रही है। यदि विश्व के मानचित्र पर नजर डालें तो हम पाते हैं कि वे क्षेत्र भी बंजर होते जा रहे हैं जो कि सहारा, गोबी आदि वास्तविक मरुभूमियों से सैकड़ों किलोमीटर दूर हैं। इस विषय के विशेषज्ञों का निष्कर्ष है कि मरुस्थलीकरण का कारण अकाल पड़ना या दुर्भिक्ष नहीं है। और प्रकृति पर सारा दोषारोपण तो एकदम असत्य है। माना कि बरसात न होने से पवन और धूप को अधिक छूट मिल जाती है कि सूखे धरातल पर विनाश लीला बढ़ाएं मगर भूमि को स्थाई आघात तो पहुँचा रहे हैं : भूमि की क्षमता से अधिक मात्रा में उससे अन्न प्राप्त करना, चारागाह पर पशुओं की अत्यधिक चराई, पेड़ पौधों की अंधाधुंध कटाई और अवैज्ञानिक तरीकों से खेती-बाड़ी चित्र (2.10)। ये भी शायद इतने प्रमुख नहीं जितना कि दोष है ग्राम्य क्षेत्रों की उपेक्षा, वहाँ की



पेड़ों की कटाई से प्रभावित क्षेत्र



अधिक चराई से प्रभावित क्षेत्र



अधिक कृषि कार्य से प्रभावित क्षेत्र

चित्र 2.10 विश्व में मरुस्थलीकरण

बुरी अर्थ व्यवस्था और अवांछित राजनैतिक दखल। इसलिए मनुष्य द्वारा वातावरण के साथ किये जाने वाले खिलवाड़ को अधिक रेखांकित किया जाना चाहिए, न कि दुष्काल को, कि जिससे आज दुनिया में कहीं अधिक तेजी से मरुस्थल फैल रहे हैं।

सन् 1914-34 का काल वह समय रहा है जबकि मानव इतिहास में धरती की उपजाऊ भूमि का कटाव के कारण सर्वाधिक विनाश हुआ। मरुभूमि तो पृथ्वी पर सदा से रही है, अकाल भी पड़ते रहे हैं। मगर हाल के वर्षों में सामान्य मौसम के परिवर्तनों पर भी अधिक भूखमरी फैली है और इस कारण से मौतें हुई हैं। धरती से लिया तो बहुत अधिक जा रहा है मगर उसकी क्षतिपूर्ति बहुत कम की जा रही है। इसका कारण जनसंख्या में बहुत अधिक वृद्धि है। अन्य स्थानों की तरह शुष्क एवं रुक्ष स्थानों में भी आबादी का विस्फोट हुआ है। एक अनुमान है कि खाद्य पदार्थ उत्पादन में 1% वृद्धि है तो जनसंख्या में 2-5% प्रतिवर्ष। यह सही है कि मरुस्थलीकरण की समस्या अविकसित देशों की भांति विकसित देशों में भी विकराल है। अमेरिका, रूस, चीन, आस्ट्रेलिया आदि भी इसकी चपेट में हैं। मगर यह भी ध्यान देने योग्य है कि विकासशील देशों में बंजरता का विकास अधिक तेजी से हो रहा है। अनुमान है कि दुनिया का लगभग 35% भूमि धरातल इसकी चपेट में है और इससे वहाँ रहने वाले 85 करोड़ मनुष्य खतरे में पड़ सकते हैं। एशिया का 1.3 अरब हेक्टेयर शुष्क निम्न कोटि की भूमि जहाँ मरुस्थलीकरण के खतरे को झेल रही है वहीं उत्तरी अमेरिका और दक्षिणी अफ्रीका तीन चौथाई शुष्क क्षेत्र इसकी चपेट में आते ही जा रहे हैं। मरुस्थलीकरण है भी एक धीमी प्रक्रिया जिसमें धरती की उत्पादन क्षमता घटती है मगर आबादी को तो खाना चाहिए। इसलिए वे उस पर और अधिक मेहनत कर कृषि बढ़ाते हैं। इस कारण वह तेजी से अनुपयोगी होती जाती है। अब चूंकि अस्तित्व के लिए उस क्षेत्र में आजीविका उपार्जन का कोई साधन नहीं रहता इसलिए पुरुष कस्बों में चले जाते हैं और कठिनाई झेलने को स्त्रियाँ और बच्चे इन

स्थानों में बचे रहते हैं।

मरुस्थलीकरण एक जटिल समस्या है जिसका निराकरण मानव के अस्तित्व के लिए शीघ्रता से किया जाना आवश्यक है। धरती का खेती के अतिरिक्त उपयोग, फसलों की अदला-बदली, मरुस्थलीय पौधों को ही बढ़ावा देना वहाँ की पारिस्थितिकी में कम से कम बदलाव लाए जायें तो कुछ नियंत्रण पाया जा सकता है। यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि इन समस्याओं पर विचार करने वाले इन स्थानों से दूर बैठे होते हैं तथा वे स्थानीय समस्याओं के अनुकूल तरीकों से अपरिचित होते हैं। ग्राम्य संस्कृति में भूमि संरक्षण का सर्वोपरि महत्त्व है, उनके वर्षों की समझ के बाद अपनाए गए तौर तरीके हैं जिन पर सोच विचार किया जाना चाहिए। आज के समय के अनुरूप उन्हें ढाला जा सकता है। उनके उपकरणों में सुधार किया जाए मगर उन पर भारी भरकम मशीनें थोपकर, कृत्रिम खाद और कीटनाशक की अनुचित मात्राएँ देकर लम्बे समय में होने वाले नुक्सान के बीज हम बो रहे हैं। गरीबी कदाच् वह बुराई है जिस कारण धरती और वनस्पति का दुरुपयोग हो रहा है। बीमारी और बुरा जीवन स्तर भी अनावश्यक कारण हैं जिनके मारे मनुष्य अति करने पर बाध्य हो जाता है।

मरुस्थलीकरण विरोधी कार्यक्रम लम्बे समय तक योजनाबद्ध होने पर ही, सफल हो सकते हैं। भूमि को वंध्या होने से बचाने हेतु उसे कुछ समय के लिए खाली छोड़ना होगा। न भेड़ों के खुर उसे और तोड़ें, न ही लोह हल का फाल उसे और उलट-पुलट कर ढीला करें। ग्रामवासियों तथा आदिवासियों की बुद्धिमता सुने समझें, उन्हें आर्थिक और तकनीकी सहायता दें तो इन सुसंस्कृत व्यक्तियों द्वारा अपनी जन्म-भूमि को बांझ होने से बचाया जा सकता है।

3. थार का कायापलट

जरुरत यह है कि हम फिर से कान जमीन पर रखें और उसके गूढ़ सच की फुसफुसाहट सुनें (–इंदिरा गांधी (विश्व संरक्षण नीति के उद्‌घाटन अवसर पर)

राजस्थान का पश्चिमी भूभाग जहाँ आज बालू बिछी है और वनस्पति तथा वन्यजीव अल्प मात्रा में हैं, ऐसा वहाँ आज से 75-100 वर्ष पूर्व नहीं था। यदि ज्ञात इतिहास से पूर्व के काल में झांकें तब तो पता लगता है कि यह सारा क्षेत्र अति विकसित था। श्री गंगानगर शहर से दूर नहीं है एक चर्चित स्थान कालीबंगा। वेद वर्णित नदी सरस्वती के पाट पर यह पुरातत्व विभाग द्वारा खोजा गया महत्त्वपूर्ण स्थल है। न वह नदी रही न ही वह सुसंस्कृत शहर अब, मगर सूखे पाट आज भी हैं, और बहुत कुछ बताते इधर-उधर बिखरे टेराकोटा वहाँ विद्यमान हैं। यहाँ की धरती पर बहुत सारी मिट्टी की चूड़ियों जैसी प्राचीन काल की वस्तुएँ (टेराकोटा) पड़ी थी इसीलिए कहते हैं इसका नाम कालीबंगा पड़ा। सिंधु सभ्यता एवं पूर्व हड़प्पन सभ्यता की ये बातें अभी हम छोड़ भी दें तो भी देखते हैं कि एक शताब्दी से भी कुछ कम समय पूर्व जंगली जानवरों एवं घने झाड़ झंखाड़ के कारण यह स्थान सजीव था। आज के थार मरुस्थल का विस्तार कच्छ तक है एवं उधर सीमा पार सिंध क्षेत्र में भी उसका प्रसार है। मुगलशासक बाबर ने अपने अनुभवों में बार-बार चर्चा की है कि वे इस ओर शिकार के लिए जाते

थे। यों तो शेर गिर के पहाड़ों के वासी थे मगर उनका स्वतंत्र विचरण थार मरुस्थल में दूर-दूर तक था। चीते तो मरुस्थल में बहुतायत में थे। वाहनों की दौड़, सैन्य कार्यवाही, बढ़ी जनसंख्या और उसकी माँग से सर्वाधिक विनाश हुआ वन्य जीवों का। बहुत पहले की बात नहीं है जोधपुर के पास के क्षेत्रों में काले हरिणों के झुण्ड निर्भय विचरण किया करते थे तो जंगली सूअरों का फसल पर आक्रमण का सदा डर बना रहता था। अब ये प्रजातियाँ वहाँ नहीं हैं। मगर चिंकारा के झुण्ड कुछ दूर की बस्तियों में देखे जा सकते हैं। बरसाती फसल को नुक्सान पहुँचाने नील गायें अब भी ऐकायक आ धमकती हैं। यहाँ अनेकों पक्षी मुक्त विचरण किया करते थे। सोन चिड़िया मुश्किल से दिख़लाई देती हैं, गोड़ावण भी उतने नहीं रहे। बचे हैं कुछ तीतर, बटेर, खरगोश, बिल्ली, करकल आदि।

सन् 1920 के बाद के वर्षों में यहाँ के पेड़ और पौधों की बेशुमार कटाई हुई। बहुतायत में तो वे तब भी नहीं थे मगर यत्र-तत्र बिखरे हुए थे तथा पानी के स्थानों पर सघन थे। जनसंख्या वृद्धि से उपजी आवश्यकताओं ने उनकी असीमित कटाई की। वृष्टि की अपर्याप्त मात्रा तथा अनियमितता ने जन-जीवन कठिन कर दिया। वैकल्पिक तौर पर बढ़ा हुआ पशुपालन व्यवसाय कहीं-कहीं भूमि के लिए घातक हो उठा। स्वतंत्रता पूर्व तथा स्वतंत्रता के तुरन्त पश्चात् तो वहाँ की स्थिति अति दयनीय हो गई थी। कुछ वैज्ञानिक प्रेक्षणों ने आशंका जताई है कि मरुस्थल बढ़ रहा है और वह एक ओर से दिल्ली की ओर अग्रसरित है। तेजी से मरुस्थलीकरण अपने जबड़े फैला रहा है जिस पर यदि ध्यान नहीं दिया गया तो शीघ्र ही बुरे परिणाम नजर आएँगे। इसी का परिणाम था कि रुक्ष क्षेत्र का वैज्ञानिक अध्ययन भी देश की प्राथमिकताओं की फेहरिश्त में आ गया।

काजरी : राजस्थान के जोधपुर शहर में स्थित एक प्रयोगशाला तथा मरु निवासियों के लिए वैज्ञानिक सुविधा का नाम केंद्रीय रुक्ष क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (Central Arid Zone Research Institute) है। संक्षेप में काजरी

(CAZRI) नाम से यह सुविख्यात है। काजरी के कार्यों के बारे में जानकारी से पहले यह उचित होगा कि हम जानें कि इसकी स्थापना कब हुई। वस्तुतः मरुस्थलीय खण्डों को रिहायश तथा खेती आदि कार्यों के लिए फिर से तैयार किया जाय, इस बात की माँग विश्व के अनेक देशों में पचास के दशक में उठी थी। भारत में भी भूमि की बंजरता एक प्रमुख समस्या तब थी। सन् 1952 में जोधपुर में इसी संदर्भ में पहला प्रयास "डेजर्ट एफोरेस्टेशन रिसर्च स्टेशन" संस्थान से आरंभ हुआ। सन् 1957 में इसका विस्तार किया गया और नए कार्यक्रमों के अनुसार इसका नया नाम "डेजर्ट एफोरेस्टेशन एवं सोइल कंजरवेशन स्टेशन" रखा गया। भारतीय कृषि शोध परिषद (ICAR) की स्थापना के साथ 1959 में यह संस्थान वृहद् लक्ष्य तथा कार्यक्रम लेकर "केंद्रीय रुक्ष क्षेत्र अनुसंधान संस्थान" बना। हमारे देश में गर्म रुक्ष क्षेत्र करीब 3.2 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्रफल में फैला हुआ है। राजस्थान के बलुआ क्षेत्र में तो मरुस्थलीय प्रभाव स्पष्ट हैं मगर मरुस्थलीकरण की चपेट में आंध्रप्रदेश का 21 लाख हेक्टेयर, कर्नाटक का 8.6 लाख हेक्टेयर, महाराष्ट्र का 1.3 लाख हेक्टेयर, हरियाणा का 12.8 लाख हेक्टेयर, पंजाब का 14.5 लाख हेक्टेयर, गुजरात का 62.2 लाख हेक्टेयर और राजस्थान का 196 लाख हेक्टेयर क्षेत्र है। काजरी ने अभी चार क्षेत्रीय शोधशालाएँ उस क्षेत्र की स्थानीय समस्याओं को ध्यान में रखकर स्थापित की हैं। इनमें से तीन राजस्थान में हैं तथा एक गुजरात में।

काजरी के विभिन्न क्षेत्रों में हो रहे शोधकार्य निम्न आठ भागों में बाँटे हुए हैं : संसाधन सर्वेक्षण एवं प्रबोधन (Resource Survey and Monitoring), संसाधन प्रबंधन (Resource Management), कृषि-योग्य पैदावार तंत्र (Perennial Cropping System), पशु विज्ञान एवं कृन्ताक नियंत्रण (Animal Sciences and Rodent Control), ऊर्जा प्रबंधन, अभियांत्रिकी तथा उत्पाद संसाधन (Energy Management, Engineering and Product Processing), सामाजिक एवं सूचना विज्ञान (Social and Information Sciences) तथा दूर

तक पहुँच कार्यक्रम (Out Reach Programme)। अपने शोधकार्यों हेतु काजरी ने मरुस्थल में पाँच स्थानों पर बड़े आकार के प्रायौगिक खेत बनाए हैं। जोधपुर, पाली, बीकानेर, जैसलमेर तथा भुज में स्थित हैं। पौधे और भूमि संरक्षण के लिए प्रतिबद्ध आधुनिक यंत्रों से सुसज्जित ये शोधक्षेत्र वहाँ के स्थानीय व्यक्तियों की समस्याओं का निराकरण करते हैं। काजरी में ही कृषि, मौसम, विज्ञान संबंधित प्रयोगशालाएँ हैं। यहाँ पर वर्ष भर के मौसम संबंधी आँकड़े एकत्रित किए जाते हैं। वृष्टि, वायु-तापमान, आर्द्रता, वायुवेग, सौर विकिरण आदि के वार्षिक आँकड़ों के अध्ययन के आधार पर वहाँ किस तरह की फसल उपयुक्त रहेगी जानना अधिक भरोसेमन्द हो जाता है। उदाहरण स्वरूप, 1994-95 का काजरी का कार्यकारी बजट लगभग 600 लाख रुपए का था।

काजरी की उपलब्धियों पर एक नजर डालो तो तुम्हें चौकाने वाली बात लगेगी कि वैज्ञानिक शोधकार्य की तथाकथित उपेक्षित विषयों में भी कितनी अधिक आवश्यकता है। बौद्धिक आनन्द एवं पदार्थ के गूढ़तम रहस्यों का ज्ञान जहाँ मानव के विकास के लिए आवश्यक है वहीं उसके अपने दैनिक कार्यों हेतु आधुनिक एवं वैज्ञानिक सुविधा जुटाना भी आवश्यक है। इस ओर की प्रत्येक तिल-तिल प्रगति दूरगामी अच्छे परिणामों की आधारशिला है। अवैज्ञानिक क्रियाकलापों ने उपयोगी भूमि को अनुपयोगी बना दिया तो विपरीत तौर पर वैज्ञानिक प्रबंधन द्वारा हम बंजर हुए क्षेत्र को पुनः जीवनयापन हेतु प्राप्त कर सकते हैं। वस्तुतः काजरी में भूमि के विभिन्न प्रकार जो कि मरुस्थल में उपलब्ध हैं, वहाँ की वनस्पति, वहाँ का तलीय जल, वहाँ का भूजल तथा भू-प्रयोग का विस्तृत अध्ययन हुआ है। काजरी के अध्ययनों में वायु और जल से मरुक्षेत्र की भूमि का कटाव, लगातार घटती चारागाह की भूमि और पीने के पानी की कमी तथा उसके शुद्धिकरण की समस्याओं को गंभीरता से लिया गया। वहाँ प्रचलित नाड़ी (छोटी तलैया) को जल ग्रहण हेतु ठीक कराना, नये टांकों (पक्के ताल) और ट्यूबवेल का निर्माण कराना, रेत के

टीलों के स्थिरीकरण और उनके प्रबंधन का कार्य, चारागाह भूमि में अधिक उपज वाली घास और फलों के पेड़ लगाना आदि कार्यों को प्राथमिकता दी गई है। वहाँ किए गए शोधकार्यों ने सुझाया कि वहाँ की घामण एवं सेवण घास मृदा कटाव को रोकने के लिए सबसे उपयुक्त अवरोध का काम करती हैं। इन कार्यों को बढ़ावा देने के लिए बीज बैंक और मृदा परीक्षण केंद्रों ने उपयोगी भूमिका निभाई है। मरुभूमि में उगने वाले बाजरा, मूंग, मोठ, ग्वार, सरसों की नई-नई किस्में विकसित की गई जो कि अधिक उपज भी दें और कम से कम रोग ग्रस्त हो। खेजड़ी जो कि मरुस्थल का अपना वृक्ष है की अधिक तथा तेजी से वृद्धि हेतु किए गए शोधकार्य के परिणाम उत्साहवर्द्धक रहे। बेर के नए प्रकारों ने मरु स्थित किसानों को बहुत लाभ पहुँचाया है। थार पारकर गायों (गाय की एक नस्ल) पर अध्ययन किए गए और उन्हें अधिक स्वस्थ रखने के नए तौर तरीके विकसित किए गए हैं। काजरी के जन्तु वैज्ञानिकों ने बकरी की तीन प्रजातियों जमनापारी, परबतसरी और मारवाड़ी की नस्लों में सुधार किया है। इससे उनके दूध में वसा की मात्रा बढ़ी है।

काजरी की उपलब्धियों की चर्चा तब तक अपूर्ण है जब तक कि वहाँ के ऊर्जा उत्पादन एवं प्रबंधन का विवरण नहीं दिया जाए। वहाँ सौर संग्राहक, मोमबत्ती मशीन, सौर शुष्कक तथा आसवित जल प्राप्त करने के उपकरण विकसित किए गए हैं जो कि मरुस्थल के लिए अनुकूलित हैं। मरुभूमि में जल की कमी होने से खेती में सिंचाई करते समय विशेष ध्यान रखना होता है। मरुभूमि में बूँद-बूँद सिंचाई योजना अधिक उपयोगी पाई गई है। काजरी ने मरुक्षेत्र के विकास हेतु सामाजिक आर्थिक सर्वेक्षण कार्य भी किए हैं। उसके आधार पर कुछ तथ्य सामने आए हैं जो कि रेगिस्तानीकरण को बढ़ावा देते हैं। सर्वेक्षण बताता है कि थार क्षेत्र में प्रति व्यक्ति कम भूमि की उपलब्धता, कम उत्पादकता, लगातार बुवाई जैविक खाद का प्रयोग न करना, ट्रेक्टर का अधिक प्रयोग, अधिक पशु संख्या, पेड़ों और झाड़ियों की अधिक कटाई,

गोबर का ईंधन के रूप में प्रयोग आदि ने भूतल, वायु तथा जल से भूमि कटाव को बढ़ावा दिया है। संरक्षण की स्वदेशी विचारधारा है कि फसल अवशिष्ट, गोबर की खाद और वनस्पति की पत्तियों का खेती में अधिक उपयोग किया जाए। फलदार वृक्ष, लताएँ और चारेवाली फसलें जमीन के कटाव को बचाते हैं अतः उन्हें विकसित किया जाए।

इंदिरा गांधी नहर परियोजना : मेरी धरती जो कि "धरती धोरां री" कहलाती है। एक समय में परदेशी यात्री से कहा जाता था – भैया हम से दूध माँग लो, पानी नहीं पिला सकते। यह धरती बहुत अरसे से प्यासी रही है। यदि लूनी, घग्घर आदि नदियों में बरसाती पानी बहुत आ जाए, बाढ़ की स्थिति हो जाय और वह पानी मरुस्थलीय मैदान में फैल जाए तो यह धरती चमत्कारी हो जाती है। ऐसा ही चमत्कार आठवें दशक में घटित हुआ था। कहते हैं कि तब बुवाई के लिए न हल जोते गए न ही पहले से बुवाई के लिए खेत तैयार किए गए थे। मुट्ठियाँ भर-भर कर बाजरा के दाने उछाले गए थे बाढ़ के पानी से तृप्त हुई धरती पर। और देखते-देखते अधिकांश पश्चिमी मरुस्थलीय क्षेत्र में बाजरे के दानों से ठसाठस भरे हुए सिट्टे झूम उठे थे। उस बार बाजार में इतना अधिक बाजरा आया कि खरीददार बनिया अनाज तोलते और दाम चुकाते-चुकाते थक गया। कई वर्षों से खाली पड़ी धरती में कई फसलें देने की क्षमता है यदि उसे पर्याप्त पानी मिल जाए। भूजल यहाँ गहरा है और अक्सर कुएँ से निकला पानी खारा होता है, वह सिंचाई के लिए उपयोगी नहीं है।

जल की समस्या के स्थानीय समाधान हेतु मरुस्थल में एक महत्वाकांक्षी परियोजना का नाम है : इंदिरा गांधी नहर परियोजना। हिमाचल तथा पंजाब की धरती से आया हुआ जल इस कार्यक्रम के अंतर्गत राजस्थान के मरु स्थित दूर-दूर के इलाकों में पहुँचा है। इंदिरा गांधी नहर (चित्र 3.1) बनाने की शुरुआत तो 1948 से एक छोटी परियोजना से हुई थी। यह योजना तब नांगल योजना के नाम से जानी जाती थी। फिरोजपुर के निकट हरीके



चित्र 3.1
राजस्थान का मरुस्थल और इंदिरा गांधी नहर

बेराज बनाने के साथ 1952 में इस आरंभिक प्रयास का शुभारंभ हुआ। इस कार्य हेतु राजस्थान सरकार ने आरंभिक योजना 66 करोड़ रुपए की बनाई थी। सन् 1958 की 31 मार्च को हजारों मील तक बालू की धरती में नहर द्वारा पानी के प्रवेश का शुभारंभ हुआ। आरंभिक चरण में राजस्थान फीडर बना जो कि 204 किलोमीटर लम्बा था। दूसरी मुख्य नहर जो कि जैसलमेर के रामगढ़ स्थान तक पहुँची तब तो इसकी लम्बाई 445 किलोमीटर बढ़ गई। बाड़मेर के भारत सीमा के गाँव गडरा रोड़ तक जाते-जाते यह 649 किलोमीटर हो जाएगी। इस परियोजना की क्षमता 524 मीटर^3/सैकण्ड है। यद्यपि 649 किलोमीटर लम्बाई की नहर है मगर इसकी शाखाएँ 6300 किलोमीटर में फैली हैं। इससे 13.5 हेक्टेयर क्षेत्र में कृषि हेतु जल प्रदान किया जा सकेगा। इस भाँति राजस्थान के खेती कार्य हेतु उपयोग में आने वाले क्षेत्रफल का 30% इसी द्वारा सिंचित होगा। राजस्थान नहर से जानी जाने वाली इस परियोजना का 2-11-84 को विधिवत् नामकरण इंदिरा गांधी नहर परियोजना रखा गया। लम्बाई, क्षमता तथा सिंचित क्षेत्र के क्षेत्रफल मान बताते हैं कि यह नहर परियोजना विश्व की वृहद्तम परियोजना की श्रेणी की है।

आज मरुक्षेत्र स्थित इंदिरा गांधी नहर परियोजना के समीप की जमीन की कीमत बहुत बढ़ी-चढ़ी है। सिंचाई की सुविधा से वहाँ वे फसलें उगाई जाने लगी हैं जिनके बारे में कल्पना भी नहीं की गई थी। भला तुम ही

अनुमान लगाओ कि यदि भूमिगत जल की गहराई 100 मीटर हो तो उसे उलीचने में कितने श्रम और ऊर्जा की आवश्यकता होगी? पूर्व परिस्थिति में तो यहाँ सीमित क्षेत्र में कहीं हराभरा टुकड़ा हो तो हो, वरना इक्के दुक्के बबूल और खेजड़ीं बालू की लहरियों ही नजर आते थे। गर्मी के दिनों में पारा 49^0 को पहुँचता और पीने के पानी की मटकी में अक्सर सूखे तले नजर आते थे। यहाँ औसत बरसात तब 10 से 20 सेंटीमीटर प्रतिवर्ष थी। अभी हाल से कुछ वर्षों पूर्व क़ी ही तो बात है कि जैसलमेर क्षेत्र में जनसंख्या घनत्व का मान 8 था अर्थात् एक किलोमीटर क्षेत्रफल में 8 व्यक्ति रहते थे और बीकानेर में वह मान 32 था। गंगा नहर आने पर इस क्षेत्र की किस्मत ने पलटा खाया। रोजगार के साधन बढ़ने से अब वहाँ आबादी घनेरी होती जा रही है। चारा उपलब्ध होने से पशुधन में वृद्धि हुई है। डेयरी एवं ऊन उद्योग वे नए क्षेत्र हैं जिनमें आज मरुस्थल में खूब पैसा खर्च किया जा रहा है। हरियाली बढ़ने से अब बरसात का औसत मान भी बढ़ा है। कहते हैं कि जिस मरुभूमि में अक्सर अकाल पड़ने का डर बना रहता था वहाँ अब बाढ़ की आशंका मंडराने लगती है। मरुक्षेत्र के दक्षिण पश्चिम से भी नहर द्वारा पानी के आ जाने की योजना प्रगति पर है। नर्मदा नहर परियोजना जहाँ कच्छ के क्षेत्र तथा जालोर, बाड़मेर के क्षेत्रों को भी जल पहुँचायेगी। मूंग, मोठ, बाजरा, ज्वार जैसे मोटे अनाज उपजाने वाली बलुआ मृदा ईसबगोल, जीरा, सरसों, कपास, कीन्नू की भरपूर कमाई देने वाली फसलें देंगी। इसका तो स्वप्न तक नहीं देखा गया था।

मुख्य फसल और पशुधन : थार की भूमि के निवासिंयों का मुख्य भोजन बाजरे की रोटी और बाजरे की खिंचड़ी (घाट) रहा है। बाजरा खरीफ की फसल है। इसका दाना गेहूँ के दाने से एक तिहाई आयतन घेरता है। गोल-गोल दाने का रंग हरा होता है। इसका ताजा आटा खाने में मीठा होता है। राजस्थान के फसली क्षेत्र का 30% भाग बाजरा उगाता है। यह बहुत कम वर्षा में भी खूब उपज देता है। इसकी बुवाई जून के अंतिम दिनों

में या जुलाई के आरंभिक दिनों में होती है। इसकी फसल सितम्बर-अक्तूबर में तैयार हो जाती है। इसका भूसा पशुओं के लिए चारा होता है। हाल में कृषि वैज्ञानिकों द्वारा बाजरे की संकर किस्में तैयार की गई हैं। इनसे उत्पादन अधिक होता है फिर भी लोग देशी किस्म पसंद करते हैं। कहते हैं वह दाना खोखला और नरम नहीं होता तथा उसकी रोटी-सा मिठास अन्य किस्मों में नहीं आता है। नहर और भूतल जल की सुविधा से ही आज मरुभूमि स्थित गंगानगर तथा बीकानेर के कुछ स्थानों पर गन्ना, गेहूँ, कपास, सरसों, माल्टा आदि की भरपूर फसलें होती हैं। बीकानेर के महाराजा गंगासिंह की बुद्धिमत्ता की पहचान तब भला किसे थी! 1927 में एक छोटी-सी नहर सतलुज नदी से हुसैनीवाला के निकट से निकाली गई थी, वही बढ़कर विश्व की महानतम परियोजना बन गई।

मरुस्थल में हाल ही में एक नई किस्म की फसल *जोजोबा* या *होहोबा* उगाई गई है। मूलतया यह मेक्सिको तथा उत्तरी अमेरिका के मरुस्थलों में उगाई जाती है। इस पौधे को हमारी मरुभूमि खूब रास आई है। इसके लिए सिंचाई की बहुत कम जरूरत होती है। यह एक झाड़ी नुमा पौधा है जो कि आदमी की ऊँचाई तक बढ़ जाता है। इसमें दशहरे के समय पर फूल आते हैं और होली के बाद इसमें बीज बनते हैं। ये बीज उपयोगी हैं। इनसे निकाला गया तेल कीमती होता है। यह तेल औषधि निर्माण, सौंदर्य प्रसाधन के काम में आता है। इस पौधे की एक विशेषता यह भी है कि यह 40 से 200 वर्षों तक की लम्बी उम्र का होता है।

थार भूमि में आजीविका, उपार्जन के लिए कृषि के अतिरिक्त मुख्य धंधा पशु पालन है। यहाँ की रेबारी जाति का यह मुख्य पेशा है। पारंपरिक तौर पर पशु यहाँ बहुत उपयोगी है। वे हल जोतने, खेत तक सामान लाने ले जाने, रहट चलाने तथा बोझा ढोने के लिए उपयोगी हैं। दूध की बिक्री आमदनी का मुख्य साधन है। गोबर से खाद बनता है, उसके उपले आग जलाने के काम आते हैं। आंगन लीपने में भी गोबर का उपयोग है जबकि

गौ मूत्र पूज्यनीय भी है और औषधि भी। मृत पशु का चमड़ा जहाँ चर्म उद्योग के लिए आवश्यक सामग्री है वहीं उसका स्थानीय उपयोग कुएँ से पानी खीचने के चड़स बनाने में, घी-तेल संगृहीत करने के काम में आता है। राजस्थान का मरुक्षेत्र अपनी गायों की विभिन्न किस्मों के लिए विख्यात है। यहाँ की एक प्रसिद्ध गाय है – *राठी*। यह गाय मरुवासियों की भरोसेमन्द किस्म की है। इसी तरह की एक और चहेती गाय है – *थार पारकर*। चारे की कमी होने पर रूखे सूखे डंठल मिलने पर भी ये दूध में कमी नहीं आने देती। एक और किस्म है *'मालाणी'* जो कि सर्वाधिक दूध देती है। कुछ आयातित गायों से संकर नस्लें भी तैयार की गई हैं। परन्तु वे नाजुक होती हैं यद्यपि दूध और मांस *सज्जा* में वे धनी हैं। स्थानीय बैल मजबूत होते हैं। *'नागोरी बैल'* जहाँ तेज भागता है वहीं अधिक बोझ ढोने की क्षमता भी रखता है। मरुभूमि में *'गुर्राह'* नामक भैंसें अधिकता से पाली जाती हैं। यहाँ की भेड़ों की कुछ किस्में मौलिक हैं जो बुरे समय को भी यथा शक्ति निकाल देती हैं। 'पूगल' नस्ल की भेड़ अधिक ऊन देती हैं। गंगानगर व बीकानेर जिलों में 'नाली' भेड़ें हैं। जैसलमेर, बाड़मेर क्षेत्र की 'चोकला' और 'मगरा' भेड़ें तगड़ी मानी जाती हैं। इनका औसत वजन 40 किलोग्राम होता है तथा प्रतिवर्ष यह ढाई किलो ऊन दे देती हैं। ऊन से यहाँ के शिल्पी विभिन्न वस्त्रों का निर्माण करते हैं। जैसलमेर के पटुए (पतले ऊनी कम्बल) जहाँ आकर्षक रंग और डिजाइन लिए होते हैं वही वे खूब गर्म माने जाते हैं। खादी ग्रामोद्योग इस ऊन से शालें बनाता है। मरुस्थल में बकरी की अनेकों नस्ले हैं। इनमें जमनापरी, बड़वारी तथा अलवरी विख्यात किस्में हैं।

थार मरुस्थल में आया पर्यटक यहाँ के ऊँटों की सवारी और ऊँटनी का दूध पिए बिना संतुष्ट नहीं होता। सबसे अधिक ऊँट पाकिस्तान की सीमा से लगते जिले बाडमेर में हैं। ऊँटों की छँटाई और उनकी कीमत उसकी किस्म के अनुसार होती है। मुख्यतया ऊँट दो प्रकार के होते हैं – भारवाही और सवारी ढोने वाले। दिखने में जहाँ जैसलमेरी ऊँट की गर्दन व चेहरा

मनोहारी है, वहीं उसकी ऊँचाई भी कम है। ऊँट को रेगिस्तान के अलावा अन्य स्थान भाता भी नहीं है। वह खारा पानी भी गटक जाता है। विशेष परिस्थिति में पाँच-सात दिन पानी न भी मिले तो दम नहीं तोड़ता। ऊँट की कूबड़ उसका खजाना है। इससे वह भूख प्यास के दिनों में गुजारा कर लेता है। मरुस्थल में गुजर बसर के लिए उसने अपने आप को वहाँ की प्राकृतिक परिस्थितियों के अनुकूल ढाला है। ऊँट स्वांस-निःस्वांस क्रिया धीमें-धीमें करता है इस कारण वह अपनी आर्द्रता कम से कम त्यागता है। ऊँट को पसीना बहुत कम आता है। वह मूत्र भी अत्यल्प मात्रा में त्यागता है। धूल धक्कड़ में नाक में मिट्टी का प्रवेश नहीं होने देता तथा आँखों को पलकों से ढक लेता है। उसकी पानी गटकने की क्षमता तो पन्द्रह गेलन तक है। इस पशु के होंठ कठोर तथा मोटे और खुरदरे होते हैं। कंटीली झाड़ियाँ भी वह खा जाता है। मरुस्थल में वह 100 किलोमीटर प्रति घण्टा की चाल से भाग लेता है। एक ऊँटनी अच्छी मात्रा में दूध देती है। यह दूध गाढ़ा होता है तथा इसकी मिठाई भी बनाई जाती है। ऊँट से ऊन उतारी जाती है यह खुरदरे किस्म की होती है अतः नमदे और रस्सी बुनने हेतु उपयोगी है। मरुवासियों के लिए ऊँट की खाल उपयोगी वस्तु है। इससे बनाए कुप्पों में घी-तेल का भण्डारण किया जाता है। रेगिस्तान का जहाज न केवल यात्री को एक ओर से दूसरी ओर ले जाता है वह तो उसकी जीवन यात्रा हेतु भी बहुत उपयोगी सामान देता है। इसकी हड्डियों पर नक्काशी कर सुन्दर सजावटी सामान बनाए जाते हैं। हाथी दाँत की अनुपलब्धता तथा मंहगाई से अब वैकल्पिक तौर पर ऊँट की हड्डी काम में ली जाने लगी हैं।

ऊर्जा दोहन : मरुस्थल के संदर्भ में अब तक हम इतने साक्ष्य दे चुके हैं जो स्पष्टतया बताते हैं कि जिन्हें अरसे से अनुपयोगी और आफत की संज्ञा दी जाती रही है, वे ही स्थल आज वैज्ञानिक सहयोग से महत्त्वपूर्ण और उपयोगी बन गए हैं। बालू की भूमि से ऊर्जा उत्पादन – सौ वर्ष पहले

कौन ऐसी बात कह सकता था? खनिज तेल वह काला सोना है जिसने पीली बंजर धरती को सबसे अधिक कमाऊ बना दिया। जल, नभ और थल के सारे वाहनों की गति मरुस्थल के गहरे कुँओं में पाए जाने वाले इस खनिज की दहन शक्ति से हैं। इन भण्डारों की मात्रा सीमित है। विश्व में अधिकांश ऊर्जा का उत्पादन यूरेनियम, पेट्रोलियम और कोयले से होता है। ये पारंपरिक ऊर्जा स्रोत कहलाते हैं। इनके घटते भण्डार और इनसे बढ़ते प्रदूषण से मनुष्य जाति परेशान है। ऊर्जा विहीन संसार तो मृत संसार होगा अतः विकल्प ढूंढने अत्यावश्यक हो गए हैं। गैर पारंपरिक ऊर्जा स्रोत या वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत या नवीकरण ऊर्जा स्रोत के नाम से जाने वाले उपकरण भी मरुभूमि में अधिक सफल हुए हैं। सौर ऊर्जा उत्पादन हेतु कच्चा माल सूर्य की रश्मियाँ मरुस्थल में सर्वाधिक मात्रा में उपलब्ध हैं। बायो गैस जिनमें एक पदार्थ गोबर भी है की अधिकतम उपलब्धता, पशुधन में धनी मरुस्थल में संभव है। और पवन के स्वच्छंद विचरण का भी रेगिस्तान चहेता स्थान है अतः पवन ऊर्जा का दोहन भी वहाँ अधिक मात्रा में हो सकता है।

देश के अन्य स्थानों की तुलना में थार मरुस्थल पर धूप की उपलब्धता 15 से 50 प्रतिशत अधिक है। यहाँ पर वर्ष में 319 दिन निर्मल आकाश रहता है। सूर्य की प्रखरता यहाँ सर्वाधिक होती है। ताप अथवा प्रकाश चालित सौर यंत्रों के लिए यहाँ कार्य कुशलता अंग सर्वाधिक है। कल्पना करें कि सोलर फोटो वाल्टाइक तंत्र या सौर सैल समूह की, किलोमीटर लम्बी कतार हो तो उसके लिए भूमि सस्ते दामों में उपलब्ध है तथा रख रखाव के लिए भी यहाँ कम से कम रकम चाहिए। सौर कुकर यहाँ सर्वाधिक उपयोगी और वांछित भी है क्योंकि जलाने के लिए लकड़ी उपलब्ध नहीं है, गोबर का उपयोग खाद के रूप में होता है तथा विद्युत शक्ति की उपलब्धता वहाँ भरोसे की नहीं है। गर्म पानी के लिए सौर हीटर, धान सुखाने के लिए सौर शुष्कक, खारे पानी को पीने योग्य मीठे पानी में बदलने वाले सौर स्टिल, रोजगार उपलब्ध करने वाली सौर मोमबत्ती बनाने का यंत्र न जाने कितनी

कुछ स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति हेतु ऊर्जा स्वस्थान पर ही उपलब्ध है। उसी से रात्रि में प्रकाश व्यवस्था की जा सकती है और फिर गोबर गैस संयंत्र से ज्वलनशील गैस का स्थानीय उत्पादन भी है। मरुस्थल के उत्पादन केवल स्थानीय प्रतिपूर्ति के लिए ही नहीं है। सौर ऊर्जा से अधिक मात्रा में बिजली उत्पादन का कार्य यहाँ संभव है ताकि दूर के शहरी इलाकों में उद्योग चलाने हेतु भेजी जा सके। थार मरुस्थल में चिमनी तकनीक योजना से विद्युत उत्पादन का कार्य प्रगति पर है। जोधपुर के फलौदी उपखण्ड में एक गाँव 'कानासर' के निकट इस प्रयोजन हेतु भूमि का चयन हुआ है। वहाँ एक किलोमीटर लम्बी चिमनी (या मीनार) खड़ी की जाएगी। धरती पर इसका व्यास 250 मीटर और ऊपर की ओर 150 मीटर होगा। इस के चारों ओर की भूमि पर पारदर्शी काँच की दीवारों से बड़े-बड़े कमरे बनाए जाएँगे। यहाँ जो सौर विकिरण आएँगे वे भीतर संग्रहीत हो जाएँगे जिससे वहाँ की वायु गर्म होगी। गर्म वायु चिमनी में ऊपर की ओर तेजी से उठेगी। यह तेजी से उठती वायु धरती पर बनाए गए 36 टरबाइनों को चलाएंगी। चिमनी तकनीक आधारित यह योजना एशिया में सबसे बड़ी है।

भारत सरकार का अपारंपरिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय, काजरी एवं अन्य एजेंसियाँ मिलकर जोधपुर, जैसलमेर, बाड़मेर में सौर ऊर्जा जोन स्थापित कर रही हैं। अनुमान है कि 2010 तक यहाँ से दस हजार मेगावाट विद्युत का उत्पादन हो पाएगा। यह ऊर्जा सोलर चिमनी, सोलर फोटोवोल्टाइक आदि संयंत्रों से प्राप्त होगी। इस दिशा में जोधपुर के पास मथानिया गाँव में सौर बिजलीघर का कार्य प्रगति पर है। गैर पारंपरिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय के तत्वाधान में थार मरुस्थल, जहाँ कि पवन का वेग 20 से 40 किलोमीटर प्रति घण्टा रह सकता है, में पवन चक्कियाँ तथा कुएँ से पानी खींचने वाले संयंत्र लगाए जा रहे हैं।

तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग ने 1983 में जैसलमेर जिले में *'मनहरी टीबे'* के पास खोदे गए गहरे कुँए से ज्वलनशील गैस को प्राप्त किया था।

अनुमान से ज्ञात हुआ था कि वहाँ इतनी अधिक गैस है कि 50 हजार घन मीटर मात्रा की गैस प्रतिदिन निकाली जाए तो वह कुँआ 15 वर्षों तक लगातार गैस देता रहेगा। यह स्थान भारत-पाक सीमा पर है। वहाँ से पाइप लाइन द्वारा गैस जैसलमेर के रामगढ़ तक लाई गई है जहाँ गैस आधारित बिजलीघर कार्यरत है। 1995 तक यहाँ से एक करोड़ यूनिट बिजली का उत्पादन हुआ था। रामगढ़ स्थित इस बिजलीघर की एक विशेषता यह भी है कि यह गैस तथा डीजल किसी से भी चलाया जा सकता है। 9 फरवरी 1996 की जैसलमेर के समीप के गैस आधारित बिजली घर की पहली इकाई ने उत्पादन आरंभ किया था। इस संयंत्र से 125 मेगावॉट विद्युत का उत्पादन प्राकृतिक गैस के दहन पर होगा।

राष्ट्रीय मरु उद्यान : अवश्य ही तुम्हें अब अपने देश की मरुभूमि पर गर्व हो रहा होगा। भूलवश क्षुद्र समझ बैठे हम उस धरती को जिसके धरातल पर बालू मीलों दूरी में फैली हुई है। इसी क्षेत्र में थार उत्सव एवं मरुमेला जुड़ता है। पर्यटकों के लिए इस उत्सव में सम्मिलित होना सुखद अनुभव है। जैसलमेर से कुछ दूर रेत के टीलों पर थिरकते पाँव, गाते होंठ और वाद्य यंत्रों पर चलती अंगुलियाँ, ऊँटों की दौड़, हस्तकला की प्रदर्शनी, रंग-बिरंगे वस्त्रों में सजे-धजे लोग और स्वागत में बढ़े हाथ कितना कुछ होता है ऐसे अवसर पर। दरअसल इस धोरों की धरती पर बहुत कुछ दर्शनीय है। बाड़मेर जिले में ढूहों के मध्य स्थित किराडू में ग्यारहवीं शताब्दी में बनाए गए मंदिरों के खण्डहर अब भी दर्शनीय हैं। इसे दूसरा खजुराहो भी कहा जाता है। जैसलमेर शहर तो अपने आप में अजूबा है। एक ओर पटवों की हवेलियाँ पत्थर पर कारीगरी का उत्कृष्ट नमूना है तो दूसरी ओर है बड़ी-बड़ी चट्टानों से बनाया गया दुर्ग जिसे बनाने में न पानी लगा न चूना। शहर से कुछ ही दूरी पर भारती मंदिर के पास प्रागैतिहासिक काल के पेड़ों के फॉसिल मिलेंगे तो कहीं डायनासौर के जीवाश्म के कुछ भाग। कोलायत में कपिल मुनि की तपोभूमि और बालू के टीलों के बीच पानी का बड़ा कुण्ड

है। यह स्थल बीकानेर से पचास किलोमीटर दूर है। बीकानेर तो स्वंय ही एक दर्शनीय मरु स्थित बड़ा शहर है। बीकानेर के किले में कई दर्शनीय महल हैं। यहाँ से छब्बीस किलोमीटर दूर देशनोक करणीमाता मंदिर के कारण विश्व प्रसिद्ध है। इस मंदिर का आकर्षण वहाँ स्वच्छंद विचरते हजारों चूहे हैं। *'जोधपुर'* थार मरुस्थल का सबसे बड़ा शहर है। जोधपुर को राव जोधाजी ने 1459 ई. में बसाया था। यहाँ के भवन स्थानीय बलुआ पत्थर से बने हैं। यहाँ का प्रसिद्ध स्थान 'छीतर पेलेस या उम्मेद भवन' जोधपुर पत्थर से बना है। पहाड़ी पर स्थित इस भवन के पास एक झील है। जोधपुर शहर बसने से पूर्व, बसावट पास के स्थान मण्डोर में थी। मण्डोर की पहाड़ी पर सुन्दर उद्यान है।

बीकानेर से बत्तीस किलोमीटर दूरी पर है *'गजनेर'*। प्रकृति प्रेमियों के लिए यह एक रमणीय स्थल है। इसमें एक झील है तथा संरक्षित क्षेत्र होने से इसमें तीतरों के अनेक झुण्ड रास्ता काटते हुए मिलेंगे। वही स्वच्छंद चरते और विचरते कई पशु-पक्षी नजर आएंगे। बीकानेर से ही दस किलोमीटर की दूरी पर *'ऊँट नस्ल परिवर्द्धन फार्म'* है। दर्शक को ऊँटों की इतनी सारी किस्में देखकर आश्चर्य होता है। ऊँटनी का गाढ़ा ताजा दूध पीना, यहाँ दुर्लभ अनुभव है।

थार मरुस्थल के अधिकांश लोग धर्मभीरू और पशु-पक्षी प्रेमी हैं। मगर बहुत सारे अपरिहार्य कारणों से यहाँ की वन सम्पदा तथा पशु-पक्षी संख्या में ह्रास आया है। सामाजिक संस्थाओं से संचालित यहाँ लगभग हर एक कस्बे में गौशाला और पिंजरापाला है। क्षीण काय और बीमार जीवों की सेवा सुश्रुषा की व्यवस्थाएँ जुटाने में यहाँ के लोग चंदा देते हैं। मगर उनका संवर्द्धन हो, उनके विचरण के लिए सुरक्षित भूमि हो और देखभाल हेतु एक सुव्यवस्था हो इसलिए राज्य सरकार तथा भारत सरकार के सहयोग से 'राष्ट्रीय मरु उद्यान' बालू के टीलों के बीच स्थापित किया गया है। मरुस्थल में स्थित बाड़मेर और जैसलमेर जिले के कुछ क्षेत्रों में 3000 वर्ग किलोमीटर

के विस्तार में यह उद्यान फैला हुआ है। इसका मुख्य उद्देश्य वहाँ की प्राकृतिक वनस्पतियाँ तथा वन्य जीव जन्तुओं को निर्भय रहने का स्थल प्रदान करना है। वे अपनी वंश वृद्धि सुरक्षित कर सकें इस हेतु उन्हें कुछ सुविधाएं भी वहाँ प्रदान की गई हैं। आज वहाँ पर मरुस्थली लोमड़ी, बिल्ली, बलुआ मछली (सेण्ड फिश), तीतर-बटेरों के झुण्ड विचरते नजर आते हैं। गोड़ावण पक्षी वहाँ वृद्धि कर रहे हैं। चौसिंघा, चिंकारा, कालाहिरन इधर-उधर छलांगें मारते नजर आते हैं। काले हिरनों की संख्या में वृद्धि हुई है। खेतों के आसपास से धकेली जाने वाली नील गायों को यहाँ प्रश्रय प्रदान है। वे रुक्ष वनस्पतियां जो कि लुप्त हो रही थी नया जीवन पा रही हैं। कई नए पौधों को वहाँ प्रायौगिक तौर पर उगाया जा रहा है। वहाँ रोपे गए वृक्ष जब युवा हो जाएंगे तब इस उद्यान में वन्य जीवन की नई लहर पर्यटक के लिए दृष्टांत होगी। चाहे तो मनुष्य खोयी हुई सम्पदा को पुनः प्राप्त कर सकता है।

आधुनिकता वरदान भी अभिशाप भी समय का प्रवाह एक दिशा है इसलिए एक कदम परम्परा में रहते हुए दूसरा आधुनिकता में स्वतः आ जाता है। बुद्धि विकास के इतने दबाव हैं कि आधुनिक हुए बिना अस्तित्व बनाए रखना असंभव है जीवन स्तर सुधारने हेतु, भारतीय मरुभूमि जो कि वर्षों से उपेक्षित थी में अनेकों विकास कार्यक्रम – मरु विकास कार्यक्रम, चारागाह विकास योजना, डेयरी योजना, भूमि जल संरक्षण कार्यक्रम, नई कृषि तकनीक शोधकार्य आदि बहुत सारे कार्य मुझ बालू भूमि में नई चेतना जाग्रत करने के उद्देश्य से आरम्भ हुए। निःसंदेह इनकी उपलब्धियाँ बहुत सारी हैं।

मरुवासियों की सैकड़ों वर्षों की उपासना रंग लाई। हिमालय की बर्फ का पिघला पानी मरुस्थल के *तप्त* सिलिका कणों को ठण्डा करने हेतु उमड़ पड़ा। सतलुज और व्यास का पानी साढ़े पाँच हजार किलोमीटर लम्बाई की नालियों के जरिए प्यासे क्वार्टज कणों के बीच के छिद्र संतृप्त करने के लिए उपलब्ध हुआ। अलग-अलग मदों में इस अच्छे कार्य हेतु 1326 करोड़

रुपए खर्च हुए मगर सींचित क्षेत्र ने इतने करोड़ रुपए की फसलें तो कभी की उगा दी थी। नहर के किनारे सघन वृक्षारोपण हुआ इससे वहाँ के वातावरण में आर्द्रता की मात्रा बढ़ी। मरुस्थल और इतनी नमी? भला किसे अनुमान था थार के इस कायापलट का? अब हम इस उपेक्षित भूमि की जनसंख्या पर दृष्टि डालें। सन् 1911-1921 के वर्षों में यहाँ पड़े अकाल और जानलेवा बीमारियों के कारण जनसंख्या छुटपुट रह गई थी। 1921 के बाद यहाँ की आबादी में वृद्धि हुई परन्तु हाल के वर्षों में वह ज्यामितीय दर से बढ़ी है। मृत्युदर में उल्लेखनीय गिरावट आई है। बच्चे असमय कुपोषण एवं बीमारी से काल कवलित नहीं होते हैं। यहाँ की प्रचलित कुरीति बाल विवाह अब प्रायः लुप्त सी है। अब वहाँ का आदमी लू, भूख और बीमारी से समूह में नहीं मरता।

मगर आधुनिकता की लहर में बहुत कुछ ऐसा है जिसने अधिक चौकन्ने रहने की आवश्यकता जतलाई है। सदियों से अनुभव के आधार पर विकसित हुई ग्रामीण तकनीकी, कृषि बुद्धिमत्ता, औषधिज्ञान, रीति रिवाज आदि में बहुत कुछ जन और जीव के लिए अधिक अनुकूल है। स्थानीय आवश्यकता की उपेक्षा पर पारिस्थितिकी में आया बदलाव अक्सर ऐसा झटका देता है जिसे सम्भालने हेतु भारी कीमत चुकानी होती है। वैसा ही हुआ है कुछेक बालू की धरती पर, नव मशीनी प्रकृति के विकास से। मरुस्थलवासी मानते हैं कि वहाँ के वर्षा जल को एकत्रित करने के पारम्परिक तरीके जोहड़, खदीन जो कि ताल या छोटे बांध थे स्थानीय आवश्यकता पूर्ति हेतु उपयुक्त थे। मिट्टी की आर्द्रता बनाए रखते थे। उन्हें फिर से प्राथमिकता दी जानी चाहिए। मरुस्थल में गोचर एवं ओरण वे स्थान हैं जो पशुओं की चराई के लिए सुरक्षित हैं। ये लम्बी चौड़ी खाली पड़ी भूमि पारिस्थितिकी को यथावत् रखती थी क्योंकि पशुओं के वे ही चारागाह थे। अब एक ओर वन विभाग उस पर आँख टिकाए है, दूसरी ओर सेना वहाँ अपना तोप संचालन का अभ्यास कर लेती है। खेतिहर जहाँ-तहाँ अपना खेत बना लेता है और

उद्योगपति वहाँ कोई बड़ा कारखाना लगाना चाहता है। अवश्य ही किसी न किसी तर्क की आड़ में कहा जा सकता है कि यह तो आवश्यक है क्योंकि मगर स्मरण रहे, पारिस्थितिकी की मार भविष्य में पड़ती है और तब उसे झेलने हेतु फिर किसी नई तकनीकी की ओर ताकना पड़ता है।

इंदिरा गांधी नहर की शाखाओं, प्रशाखाओं, नालियों ने उस के आस-पास की भूमि को संतृप्त कर दिया। वहाँ पास के स्थल में रिसा पानी एकत्रित होने लगा। जो कीट-पतंगे यहाँ के मूलतः निवासी नहीं थे, वे भी इधर आ धमके। नमी, सीलन और सडांध ने अनजानी बीमारियों को जन्म दिया। सर्वेक्षण के आँकड़ों से सुस्पष्ट है कि 80 के दशक तक थार भूमि में मलेरिया ग्रस्त गिनती के व्यक्ति ही हुआ करते थे। अरसे तक पड़े पानी ने प्लासमोडियम फैल्सिपेरम प्रजाति के मच्छरों को भी फलने-फूलने का भरपूर आश्रय प्रदान किया। एनोफिलीज मच्छर प्रचुरता में बढ़े। मलेरिया, मरुभूमि का जानलेवा रोग बनकर प्रकट हुआ। 1994 के अक्तूबर-नवम्बर में यह रोग महामारी-सा विकराल रूप धारण कर गया था। कुछ वैज्ञानिकों का अनुमान है कि ऐसा न केवल पानी के एकत्रित होने के कारण तथा नमी के कारण हुआ। कुछ और भी था कि कीटनाशक के छिड़काव के उपरांत भी मलेरिया फैलाने वाले मच्छर नष्ट नहीं हुए। कुछ शोधकर्मी मानते हैं कि यहाँ के क्षेत्रों में अधिक पानी पीने वाली फसलें कपास, गेहूँ आदि नहीं उगानी चाहिए। अधिक आमदनी देने वाली इन फसलों की रक्षा हेतु कीटनाशकों का अंधाधुंध प्रयोग होता है। मच्छरों ने मानव द्वारा उसको मारने हेतु बनाए गए जहर डी.डी.टी. के प्रति प्रतिरोधात्मक शक्ति अर्जित कर ली। और तब फैला अधिक घातक मलेरिया। नई बीमारियाँ, नई स्वास्थ्य सेवा की अपेक्षा रखती है। भूमि में डाले गए सिंथेटिक खाद ने भूमि की उर्वरता को कम कर दिया तो कीटनाशकों ने कीटों को अधिक मजबूत बना दिया तथा वहाँ की खग सम्पदा घटा दी।

भारतीय प्राणी सर्वेक्षण विभाग के शोधकार्यों ने मरुस्थल में हाल ही आए

नए कीट-कीड़ों पर वैज्ञानिकों का ध्यान आकृष्ट किया है। उनमें से एक है कसारी की विशेष नस्ल जो कि पाकिस्तान से भारत के इस नवीन नमी वाले क्षेत्र में प्रवेश कर गई और संख्या में उतरोत्तर प्रगति कर रही है। यह कसारी खेतों और नमी के स्थानों के आसपास दरारों में अंधेरे में रहती है। यह सबसे ज्यादा नुक्सान खेतों में बुवाई के समय करती है। फसल के नव अंकुर इनका प्रिय भोजन है। बुरी बात तो यह है कि ये जितना खाती नहीं उतना कुतर कर नष्ट कर देती है। यद्यपि राजस्थान में कसारियों की 22 प्रजातियाँ हैं मगर इनमें से थार में पाई जाने वाली एचीटा डोमेस्किटकस खेती के लिए अधिक हानिकारण है। तुम्हारी जानकारी के लिए बता दें कि भारत में कसारियों की 425 प्रजातियाँ हैं जबकि विश्व में वे 4530 प्रकार की हैं।

जोधपुर स्थित काजरी की नवीनतम रिपोर्ट के अनुसार रुक्ष क्षेत्र की लगभग 50 हजार हेक्टेयर भूमि अधिक सोडियम कार्बोनेट युक्त जल की सिंचाई से बंजर हो गई है। राजस्थान में 86 प्रतिशत भू-गर्भीय जल लवण युक्त हैं। इससे खेत में लवणीयता बढ़ती है और उत्पादकता में गिरावट आती है। राजस्थान के नहर तथा भूजल से सिंचित क्षेत्रों में जल स्तर ऊपर उठ गया है। इस कारण धरती के नीचे का लवण धरातल पर आ रहा है। यह एक और उदाहरण है कि पारिस्थितिकी में परिवर्तन किन नई समस्याओं को जन्म दे देते हैं। वैज्ञानिकों को इस तरह बढ़ती बंजरता को रोकने का एक साधन नजर आता है। वह यह कि कुछ पारंपरिक तरीकों को फिर से अपनाया जाए और वे वृक्ष लगाए जाएं जो लवणीयता कम करते हों।

मैंने आरंभ में कहा था कि थार मरुस्थली रण बांकुरों की धरती है। संघर्ष करना इनके लिए रोजमर्रा की बात है। "भले पधारो" मकान के आंगन में और लोगों के चेहरे के भावों पर लिखा रहता है। इसी कारण उन्होंने आधुनिकता का स्वागत किया। मगर उनका हृदय पारंपरिक निर्मलता और निर्भयता से ओतप्रोत है। मोटा ओढ़कर, मोटा पहन कर वे आनंदित रहना

चाहते हैं। रात के घुप अंधेरे में किसी बड़े सारे बालू के टीले पर बसी हुई ढाणी में ढोलक मंजीरे और तानपुरे ने सुरों के साथ किसी भक्त कवि की वाणी वहाँ सुनाई देगी। दोपहर में बिल्ली द्वारा झपटी चिड़िया को छुड़ा कर कोई वृद्ध घर के आंगन में लटक रहे छींके में बिठा रहा होगा। आधुनिक होते मरुस्थल की आत्मा तो अब भी वैसी है जैसी पूर्व की सदियों में रही है।

भूगर्भशास्त्री कालखण्ड का चार्ट

	क्वाटेरनरी काल (10 लाख)	*पिछले दस हजार वर्ष प्लिस्टोसिन युगान्तर*	
सेनोजोइक युग (पृथ्वी पर स्तनधारियों की अधिकता)	टर्शरी काल (590 लाख)	फ्लिओसीन युगान्तर मिओसीन युगान्तर	निओंजिन काल (280 लाख)
		ऑलिगोसीन युगान्तर इओसीन युगान्तर पेलिऑसीन युगान्तर	पलिओजिन काल (420 लाख)
मेसोजोइक युग (पृथ्वी पर सरीसृपों की अधिकता)	काल (वर्षों तक)	क्रिटेसियस (700 लाख) जुरेसिक (250 लाख) ट्रायसिक (300 लाख)	
पेलोजोइक युग (पृथ्वी पर अकशेरुकी की अधिकता)	काल (वर्षों तक)	परमियन (300 लाख) कार्बोनिफेरस (550 लाख) डिवोनियन (550 लाख) सिलुरियन (400 लाख) ऑरडोविसियन (800 लाख) केम्ब्रियन (800 लाख)	
प्रीकेम्ब्रियन युग		जीवन का आरंभ एक वर्ष पूर्व कालखण्ड 4.5 अरब वर्ष	

4. उठने से पहले

बालू स्वभाव से स्थिर नहीं रह सकतीं गति उसका धर्म है, संस्कार है। वायु से ऊर्जा पाकर उठती है, धरातल के समानांतर चलती है और धरती पर गिरती है। अपनी ऊर्जा अगले कण को देती है और वह फिर उठने का इंतजार करती है कि कोई और उसे ऊर्जा देगा विश्राम से पहले। विश्राम के इस अंतराल में मैं तुम से अपनी बात कह गई। मुझे लगता है कि मैं अधिक बातुनी हो गई। अपनी प्रकृति, मेरी धरती की प्रकृति, वहाँ पर रहने वाले जीव जन्तु, लोक संस्कृति और नव तकनीकी के बारे में मैंने जी खोल कर बताया। इसमें कोई संदेह नहीं कि विज्ञान ने सब का बहुत भला किया है। वैज्ञानिक जहाँ स्वयं शोध कर विज्ञान का आनंद लेते हैं अन्य लोग उस चेतना को अपना कर अधिक सक्षम होते हैं। वैज्ञानिक प्रत्यय अनूठे हैं – उनके विचार सुनकर आश्चर्य उत्पन्न करते हैं। भौतिकविद् नॉबेल पुरस्कार विजेता प्रो. रिचर्ड.पी.फाइनमैन ने तो अपने प्रसिद्ध लेख "विज्ञान के मूल्य" में तुम्हारी वय के जिज्ञासु के लिए बहुत शुभ कहा है। उनका मानना है कि तुम्हारी उम्र नए प्रत्यय, नए विचार नए मॉडल समझने और सोचने हेतु सर्वाधिक उपजाऊ हैं। अभी तुम ज्ञान के विभिन्न आयामों से रुबरु होते हुए बहुत कुछ मौलिक सोच सकते हो। अपने बारे में अभी तक जो ज्ञात है उसको ठीक से बता सकूं इसी प्रयास में मैंने इतना सारा कहा है। कुछ जाना-पहचाना, सरल लगा होगा। कुछ अनजाना, कठिन भी। कुछ रोचक

भी कुछ ऊबाऊ भी। कुछ सहज समझ में आनेवाला कुछ कठिनाई भरा। भाषा भी कहीं तो प्रवाहमान, सरल और कहीं रूकावट पैदा करती क्लिष्ट। मगर मैं इतना तुम्हें विश्वास दिला दूं कि कहीं कुछ भी थोपने की इच्छा नहीं रही, स्वभावजन्य जो उभरता गया वह जैसे का तैसे बता दिया। मुझे तो अब फिर उड़ान भरनी है – किसी लहर को बनाने हेतु या अर्द्धचन्द्राकार टीले के शीर्ष पर चढ़ जाने हेतु। तुम्हारे में और मुझ में इतना तो अवश्य है कि हम दोनों चंचल हैं बढ़ने के लिए उद्यत्।

संदर्भ ग्रंथ

1. **प्रवाह,** उपन्यास, धनराज चौधरी, प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली
2. **Sands of the World,** W.N. Mack and E.A. Leistikow, Sc. Am. 275 (2), 44, 1996.
3. **The Sahara,** J. Swift, Time-Life Books, Amsterdam.
4. **The Physics of Blown sand and Desert Dunes,** R.A. Bagnold, Chapman Hall Ltd.
5. **Some Problems of Heat Transfer in Porous and Dispersed Media Rajasthan Desert Sand,** D.R. Chaudhary, University of Rajasthan, Jaipur.
6. **Physical Properties of Soils,** R.E. Means and J.V. Parcher, Prentice Hall of India (Private) Ltd. New Delhi.
7. **Physics of Plant Environment,** W.R. Van Wijk (Ed.) North-Holland Publishing Company, Amsterdam.
8. **The Great Deserts,** F. Quilici, Collins London and Glasgow.
9. **Combating Desertification in Developing Countries,** J.K. Jain (Ed.), Scientific Publishers, Jodhpur.
10. **Arid Politics, Down to Earth,** September 15,30-33, 1993.
11. **Mosquitoes Storm the Desert, Down to Earth,** Nov. 30, 5-7, 1994.
12. **CAZRI Annual Report,** 1994-95.
13. **What You Care What Other People Think,** Richard Feynmann, Rupa Publication.

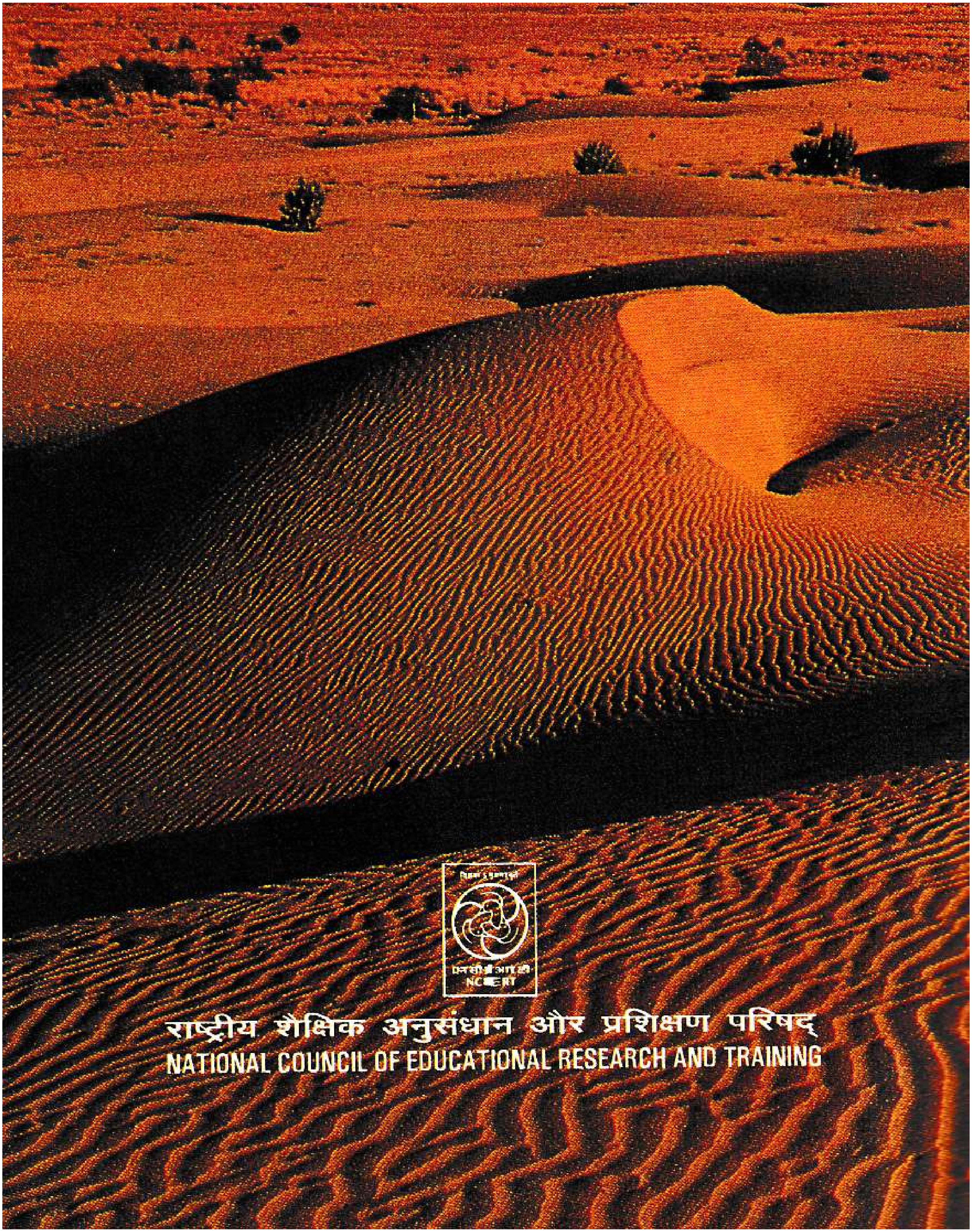
पारिभाषिक शब्दों के तुल्य अंग्रेजी के शब्द

अभिक्रिया	Reaction
अर्द्धचन्द्राकार ढूह	Barchan Dune
अवसादी	Sedimentary
आकार	Size
आकृति	Shape
आग्नेय	Igneous
आंतरिक	Internal
आदिवासी	Tribe
आर्द्रता	Humidity
आवृत्ति	Frequency
उठाव	Ridge
उड़कर आई (वातालू)	Alluvial
उर्मी	Ripple
उर्मिका	Ripple
कंकड़	Pebble
कटक	Ridge
कण	Grain, Particle
खनिज	Mineral

गर्त	Trough
चरना	Graze
चारा	Fooder
चारागाह	Pasture
चालकता	Conductivity
चिंकारा	Gazzel
तरंगदैर्ध्य	Wavelength
तलवारनुमा टीला	Serif dune
दस लाख	Million
धरातल	Surface
धूलि	Dust
धोरा	Dune
नागफनी	Cactus
टक्कर	Collision
टीबा	Dune
टीला	Dune
ढलुआ	Slip
ढूह	Dune
परास	Range
पर्यावरण	Environment
प्रजाति	Species
पृथक्करण	Separation
प्रवाह	Flow
पवन	Wind
पारगम्यता	Permeability
पारिस्थितिकी	Ecology

पुरातत्व	Archaeology
बंजर	Barren
बारखन (चंद्राकार)	Barchan
बालू	Sand
भूजल	Surface Water
भूतल जल	Ground Water
मणिभ	Crystal
मृदा	Soil
मरुभूमि	Desert
मरुस्थल	Desert
मरुस्थलीकरण	Desertification
मिट्टी	Soil
यांत्रिक	Mechanical
रुक्ष	Arid
रूपांतरित	Metamorphic
रेत	Sand
रेगिस्तान	Desert
लवणीयता	Salinity
लहर	Ripple
विश्लेषण	Analysis
शोध	Research
स्थूल	Coarse
स्थिर	Stable
संरचना	Structure
संघट्ट	Impact
संसंजक	Cohesion

संसाधन	Resource
संरक्षण	Conserve
संकलित	Integrated
सतह	Surface
समूह	Gross, Aggregate
सरंध्रता	Porosity
सौर	Solar
हिम	Snow
शृंग	Crest
क्षैतिज	Horizontal


राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING